योगविद्या

वर्ष 11 अंक 11
नवम्बर 2022
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2022

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट:
श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के प्रति गुरु-भाइयों की श्रद्धांजलि

किसी भी आध्यात्मिक महापुरुष को यदि हम सत्य शाश्वत आलोक में देखने की कोशिश करें तो हम पायेंगे कि उनका सम्पूर्ण जीवन असाधारण तत्त्वों से निर्मित हुआ है। शैशव से लेकर पूर्णता तक उनके जीवन हमारे मानसिक धरातल पर एक अमर छाप छोड़ जाते हैं। बालब्रह्मचारी योगी श्री सत्यानन्द जी महाराज के रोम-रोम में हमने उस असीम का दर्शन किया है, जिसका आलोक जीवन को मानव के स्तर से दूर ईश्वरत्व का स्वर्णिम रूप दे सकता है। आज विश्व को वस्तुतः ऐसे ही व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो अपने विशाल व्यक्तित्व से मानव जीवन को चिरन्तन सत्य का पावन पथ बता सकें। उनका यह कार्य चिर अभिनन्दनीय है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु बनावें, जिससे वे मानवों को नवीन पथ बतला सकें।

– श्रीमती अद्यावती सहाय, भागलपुर

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 11 अंक 11 नवम्बर 2022
(प्रकाशन का 60 वाँ वर्ष)

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामी सत्यानन्द जी के रिखियापीठ में दिये सत्संगों का संकलन है

4 मानव संस्कृति और स्थानांतरण
9 धर्म और धार्मिकता
13 साधना और परोपकार
20 स्वास्थ्य के सरल नुस्खे
23 महिलाओं की शिक्षा और उत्थान
31 सत्यम् वाणी
45 मानव जीवन का प्रयोजन
48 सत्यम् संवाद

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

मानव संस्कृति और स्थानांतरण

आप में से कुछ लोग दक्षिण अफ्रीका से आये हो। भूविज्ञान कहता है कि पहले दक्षिण अफ्रीका और भारत एक था, जिसे आज गोंडवानालैंड कहते हैं। किसी वजह से ये गोंडवानालैंड दो भागों में बँट गया, तब अफ्रीका दक्षिण की तरफ होते गया, भारत दूसरी तरफ। यहाँ अभी भी अनेक जन-जातियाँ हैं जो अफ्रीकी मानसिकता की हैं, उनमें नृत्य और संगीत बहुत प्रचलित है।

स्थानान्तरण या माईग्रेशन हर देश की एक विशेषता है। अगर कोई संस्कृति अपने को शुद्ध आर्य या शुद्ध एंग्लो-सैक्सन या शुद्ध मंगोल कहती है तो गलत कहती है। पलायन और देशान्तरण एक यथार्थता है। अब अमेरिका को ही देख लो। वहाँ यूरोप से ही तो लोग गये हैं न? सारा अमेरीका तो बाहरी लोगों से भरा है न? बीस-तीस साल का ही इतिहास देखो, वीयतनाम से अमेरिका की ओर पलायन हुआ है, उसके पहले चीन से हुआ। पलायन

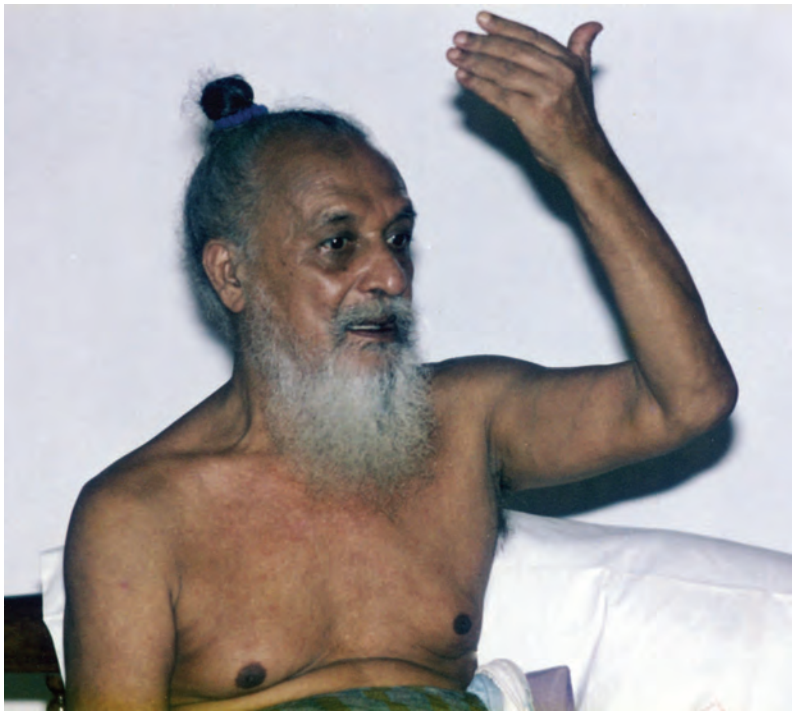

और देशान्तरण तो होते ही रहता है, मगर इसका कारण केवल राजनैतिक नहीं होता, व्यापार भी एक कारण होता है। पंजाबी लोग अमेरिका में बैठे हुए हैं, सिन्धी लोग कहाँ-कहाँ चले गये, वे तो स्पेन, कैनरी आइलैंड, अमेरिका, हांगकांग, सब जगह मिलते हैं। यह व्यापार के कारण हुआ देशान्तरण है। अब तो अन्तरराष्ट्रीय शादियाँ और अन्तरजातीय सम्बन्ध भी हो रहे हैं। इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

हिन्दुस्तान से सबसे बड़ा पलायन जो हुआ, वह हम अन्दाज लगा सकते हैं कि महाभारत के समय हुआ। जब भी गृहयुद्ध होता है तो पलायन जरूर होता है। गृहयुद्ध तब होता है जब किसी मुल्क के अन्दर दो राजनैतिक पार्टियाँ बराबर अधिकार और बल रखती हैं। उन्नीस-बीस का ही फर्क होता है तो वहाँ गृहयुद्ध होता है। जहाँ एक पार्टी बहुत मजबूत हो और दूसरी पार्टी कमजोर तो वहाँ गृहयुद्ध नहीं होता। महाभारत के समय कौरव और पाण्डव, ये दोनों पार्टियाँ मजबूत थीं, इसलिए गृहयुद्ध हुआ। उसमें कौरव हारे तो स्वाभाविक है कि एक बड़े समूह का पलायन हुआ और ये लोग वर्तमान आयरलैंड तक चले गये। वहाँ भी ये लोग मिलते हैं।

आठ-नौ सौ साल पहले जब उत्तर-पश्चिम से मुसलमानों के आक्रमण शुरू हो रहे थे, उस वक्त भी बहुत बड़ा पलायन हुआ है। जितने भी कलाकार थे, नाचने वाले, सर्कस करने वाले, नौटंकी करने वाले, ये सब लोग भाग गये और यूरोप में अलग-अलग जगह पहुँच गये। आज उन्हें जिप्सी कहते हैं, पर इतिहास कहता है कि ये लोग मूलत: भारतीय हैं और आज तक वहाँ के लोगों ने इन्हें कहीं पर जमने नहीं दिया है। रोमानिया में बहुत बड़ी संख्या में हैं, रूस में हैं। रूस में शायद कहीं-कहीं पर जम गये हैं, उनकी कॉलोनी है जहाँ उनको आवासी अधिकार दिये गये हैं।

महाभारत के बाद जो पलायन हुआ वे लोग तो जम गये, फिर ये लोग क्यों नहीं जम पाये?

यह तो हाल की बात है न, सात-आठ सौ साल में क्या हुआ होगा? महाभारत के समय के लोगों ने स्थानीय धर्म को स्वीकार कर लिया, रोमन कैथोलिक हो गये, शादियाँ हो गयीं, आँखें नीली हो गयीं, अंतर खत्म हो गया। जबान भी बदल गई, तौर-तरीके बदल गये। वहाँ के अंत्येष्टि, शादी, तलाक आदि के कानून स्वीकार कर लिये, भेद खत्म हो गया। भेद क्यों होता है? जब कोई

पलायन करता है तो अपने तरीके साथ ले जाता है। तुम मुर्दा जलाते हो तो उनकी समझ में नहीं आता कि तुम मुर्दा क्यों जलाते हो, जिन्दगी भर विरोध होते रहता है। सती-पतिव्रता, यह सब उनकी समझ में नहीं आता। उनके मूल्य और इनके मूल्य एक हो गये तो जम गये।

जिप्सियों के साथ यह अब तक नहीं हो पाया। कई शताब्दियों पहले उनके साथ बहुत बड़ा हत्याकाण्ड भी हुआ था, हिन्दू कुश पर्वतों में। कुश फारसी का शब्द है जिसका मतलब होता है कत्ल। हिन्दू कुश का मतलब होता है हिन्दुओं का कत्ल, उसी से उस पर्वत शृंखला का नाम पड़ा। उस हत्याकाण्ड के बाद ये लोग भागे हैं।

उसके बाद फिर पाकिस्तान बनने पर बड़े पैमाने पर पलायन और स्थानान्तरण हुआ। इसके और भी कई कारण हैं। आजकल लोग पढ़ाई के लिये या नौकरी-व्यापार के लिये अमेरिका जाते हैं, यह भी तो देशान्तरण है – एक जगह से उठकर दूसरी जगह जाना, अपनी जन्मजात संस्कृति को छोड़कर एक परायी संस्कृति में जाना और उनके तौर-तरीकों को अपना लेना। उनकी औरतें हाथ मिलाती हैं, यह उनकी संस्कृति है। जब तुम दूसरी जगह जाते हो और उनकी संस्कृति को स्वीकार नहीं करते हो तब तुम को समस्या होती है।

सब देशों में लोगों का आवागमन हुआ। भारत में तो बहुत हुआ है। शक, पारसी, मुगल, कितने ही तरह के लोग यहाँ आए हैं, क्योंकि एक समय हिन्दुस्तान की वही स्थिति थी जो आज अमेरिका की है। यह समृद्धि और सुनहरे अवसरों का देश था। यहाँ खाली जमीन थी, जहां पर सब तरह के लोगों को बसा दिया गया। केवल धर्म ने उनको एक किया। दक्षिण भारत और उत्तर भारत की सारी प्रणालियाँ अलग हैं, मगर धर्म जोड़ने से सब एक हो गये। उत्तर भारत में जितने भी यज्ञ इत्यादि शुभ कर्म होते हैं वे पूर्णमासी को होते हैं जबकि दक्षिण भारत में सब अमावस्या को होते हैं। मगर इस अन्तर को स्वीकार किया गया है। धर्म ने इस देश की अनेकता को एकता में जोड़ा है। भाषा या सरकार ने नहीं जोड़ा है, केवल धर्म ने एकता पैदा की है, और यह कितनी बड़ी एकता है! कश्मीर में नारियल होता है क्या? नहीं, मगर बिना नारियल के वहाँ पूजा नहीं होती। नारियल होता है दक्षिण भारत में। बिना नारियल-सुपारी के पूजा न कश्मीर में, न गढ़वाल में, न कुमाऊँ में, कहीं नहीं होती है। सब जगह तुम्हें नारियल मिलेगा और यह हमारे धर्म की उदार पद्धति का एक अंग है कि हमने उनके नारियल को स्वीकार किया है।

लोगों के स्थानान्तरण और मेल-मिलाप से आनुवंशिक ढाँचे पर असर पड़ता है। लोगों का आनुवंशिक ढाँचा, उनका जेनेटिक स्ट्रक्चर सही होना चाहिए। आनुवंशिक ढाँचे में गड़बड़ी होने से कितनी सारी बीमारियाँ होती हैं। जब कोई आदमी इस वजह से बीमार हो तो उसको ठीक नहीं किया जा सकता। हम तो शुरू से कहते आये हैं कि अपनी जाति में शादी करो मत, और अपने गाँव में तो शादी बिल्कुल ही मत करो। शादी वहाँ करो जहाँ कहीं भी आपका खून मिले ही नहीं, यानि जहाँ भी तुम शादी करो उसके कुल में और तुम्हारे कुल में जरा भी कुछ मिलना नहीं चाहिये। तब जाकर जो संतान उत्पन्न होगी, वह नयी और बढ़िया किस्म की होगी।

आसाम, मणिपुर और त्रिपुरा की तरफ लोगों की आँखें और नाक चीनियों के जैसे होते हैं, इसका क्या आनुवंशिक कारण है?

हाँ, चीन से उनका सम्बन्ध होगा, उनकी जाति से मिश्रण होगा। भारतीय, चीनी, एंग्लो-सेक्सन, अफ्रीकन – ये अलग-अलग जातियाँ हैं, किसी की

आँखें छोटी और नाक चपटा रहता है। यह तो मंगोलिया से भारत के उत्तर पूर्वी क्षेत्रों तक दिखता है, बंगाल में भी थोड़ा-सा मिलता है। जाति का सम्बन्ध आनुवंशिकी से होता है। जाति संस्कृत के ज्ञाति शब्द से आया है, जिसका मतलब होता है पहचान। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र – ये जातियाँ नहीं हैं, वर्ण हैं।

इस सम्बन्ध में बहुत-सी बातों को समझना कठिन है। मनुष्य का जीवन एक रहस्य है, देखा जाए तो यह सारी सृष्टि ही एक रहस्य है। संतों-मुनियों-ज्ञानियों ने अपने ध्यान में बहुत अनुभव प्राप्त किये, मगर कहाँ तक वह सच है, कहाँ तक वह अन्तिम है, यह कहना बड़ा मुश्किल है। भगवान की माया का पार किसी ने नहीं पाया। थोड़ा बहुत जाना, उसके बाद कुछ बोल दिया। जिसने बोला वह क्या बोला, और जिसने समझा वह क्या समझा, यह कहना बड़ा कठिन है। इसने कहा कुछ और, तुमने समझा कुछ और। भगवान की माया क्या है? जिसने सूर्य, चन्द्रमा और सारा ब्रह्माण्ड बनाया वह कौन है? वह कोई शक्ति है या कोई आदमी है, एक-दो लाख हाथ वाला, या कोई चेतना है? अगर वास्तव में है तो कहाँ है? वह मरता क्यों नहीं? वह पैदा हुआ कि नहीं हुआ?

अब यह विचार कि वह पैदा ही नहीं हुआ, इसे मन में लाना ही मुश्किल है। कहते हैं कि सृष्टि का कोई आदि नहीं है। ठीक है, बोल तो दिया, मगर सोचो आदि का मतलब क्या होता है? कोई जवाब नहीं है। क्या देश और काल गणित के दायरे की चीज है? इसके पहले क्या था? और उसके भी पहले? सोचते-सोचते दिमाग पगला जाता है, समझ में नहीं आता है। ईश्वर की महिमा को समझना बहुत मुश्किल है। सबसे बड़ी चीज तो यह है कि सचमुच में यह सब हो रहा है या हमलोग स्वप्न देख रहे हैं। यह भी एक अवधारणा है। हमने तो वहाँ दिमाग लगाकर अब दिमाग को छुट्टी दे दी है। दिमाग से कहा, 'बेटा, अब तुम बैठो, खाली रामायण पाठ करो, भगवान का भजन करो, बाकी सब तुम्हारी समझ में आने का नहीं।' भगवान की माया अज्ञेय है, उनका पार नहीं पा सकते हैं। इसलिए सीधा भगवान का भजन करो। दो-चार दिन जो भगवान ने जिन्दगी दी है, उसमें खाओ, पियो, मन लगाओ और सो जाओ।

– 2 जनवरी 1998, रिखियापीठ

धर्म और धार्मिकता

धर्म कैसे बनते हैं? भारत में अनेक पंथ और सम्प्रदाय हैं जैसे राधास्वामी पंथ आदि, क्या वे सब भी एक दिन धर्म बन जायेंगे?

धर्म बनने के लिये निश्चित नियम होते हैं। सबसे पहले उसकी अपनी एक पुस्तक होनी चाहिये और वह पुस्तक उसी आदमी को बनानी चाहिये जो भगवान की आवाज सुन सकता हो जैसे मुहम्मद साहब। अब हम लिखेंगे तो लोग कहेंगे कि स्वामी सत्यानन्द जी ने किताब लिखी है, लेकिन मुहम्मद साहब तो पढ़े-लिखे आदमी नहीं थे, निरक्षर थे। भगवान ने उनसे कहा और उन्होंने बोलना शुरू कर दिया। इसी तरह बाईबिल के बारे में भी कहते हैं कि वह उद्घाटित हुई है।

केवल कोई अच्छा प्रचारक हो, अच्छी व्यवस्था हो, उसी से कोई धर्म नहीं बनता। धर्म के कुछ सिद्धान्त होने चाहिये। जैसे वैदिक धर्म के सिद्धान्त हैं मूर्ति पूजा, पुनर्जन्म, विवाहादि संस्कार, ब्रह्मचर्य आदि। अब ईसाई मत में

मूर्ति पूजा को नहीं मानते हैं, पुनर्जन्म को नहीं मानते हैं, तलाक को शुरू से मानते हैं तो अलग धर्म हो गया। जब तुम नया धर्म बनाते हो तो उसमें कुछ नया स्रोत होना चाहिये। अब एक ही आम का संकरण करके दूसरा आम निकालो, नीलम निकालो, आम्रपाली निकालो, आखिर आम ही तो है वह, कोई नयी चीज थोड़े ही है। उसी तरह बौद्ध धर्म भी वैदिक धर्म से ही निकला, जैन धर्म भी वैदिक धर्म से ही निकला। बौद्ध धर्म को शुरू में राजाओं का आश्रय मिला, मगर बाद में हिन्दुस्तान में समाप्त हो गया। बाहर के देशों में इसको मान्यता मिली, आश्रय मिला तो वहाँ रह गया, सामाजिक व्यवस्था का अंग बन गया। धर्म को केवल एक दर्शन नहीं रहना चाहिए, बल्कि एक ऐसी सामाजिक प्रणाली बनना चाहिए जिसका देश के लोग अनुसरण करें। तभी वह धर्म बनता है।

हर एक धर्म में कट्टरता होती है, पर हमारे धर्म में ज्यादा नहीं है। तुम कोई चीज मानते हो या नहीं मानते हो, तुम्हारे ऊपर है। हमारे धर्म में लचीलापन है। भारत के लोगों को पश्चिमी संस्कृति, भाषा, तौर- तरीका लेने में कोई परेशानी नहीं होती। यहाँ की लड़कियाँ सिर के बाल काट सकती हैं, सलवार-कमीज, साड़ी, जींस, कुछ भी पहन सकती हैं, लड़के-लड़कियों ने हाथ भी मिलाना शुरू कर दिया। अगर लड़की ने सिर के बाल काट दिये तो क्या हुआ? उसने क्या गलत किया? अगर सिर से पल्लू उतर गया तो क्या हुआ? अब जब लड़की कहती है कि सिर पर पल्लू नहीं रखेंगे तो नहीं रखेंगे। उसके व्यक्तित्व या चरित्र पर क्या बुरा असर पड़ा? अगर साड़ी के बदले जींस पहनकर चलती है तो क्या फर्क पड़ा?

हमारे यहाँ लोगों ने धर्म की परिभाषा बहुत व्यापक और उदार कर दी। कोई भी कपड़ा पहनना है तो पहनो, बस ढंग से पहनो। एक बिंदु तक, जहाँ तक मर्यादा है, उस मर्यादा के अन्दर रहना धर्म है। मर्यादा का मतलब होता है दूसरों का ख्याल रखना। यही असली धार्मिकता है। अब अगर तुम्हारा समाज कहता है कि लम्बे बाल रखो तो रख लो, क्या फर्क पड़ता है? भारतीय समाज जल्द बदल जाता है, मद्रास में लड़कियाँ कितनी पढ़ी-लिखी हैं, केरल की लड़कियाँ कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाती हैं! हिंदू धर्म में लचीलापन है, लेकिन जहाँ धर्म बहुत कट्टर हैं वहाँ यह सम्भव नहीं है।

राधास्वामी पंथ 'शब्द सुरत योग' है, हठयोग से निकला है। इसी तरह अलग-अलग पंथ होते हैं, ये धर्म नहीं हैं और न ही धर्म बन सकते हैं। कोई

भी धर्म बिना काडर के, बिना संगठन के नहीं चल सकता है। हमलोगों का संन्यास सम्प्रदाय टिका है क्योंकि हमारा संगठन है, एक नियम है। भले ही कोई संन्यासी जाकर शादी कर ले, मगर संगठन तो है। इसी तरह सिक्खों में संगठन है, काडर है। ग्रंथी, रागी आदि अलग-अलग नाम होते हैं उनके संगठन में, उनकी उचित शिक्षा और प्रशिक्षण होता है, वे टिके रहेंगे।

सिक्ख धर्म का वैदिक धर्म से कोई दार्शनिक विरोध नहीं है। विचारक या आलोचक कभी भी वैदिक धर्म और सिक्ख धर्म के बीच झगड़ा करा नहीं सकेंगे, दार्शनिक आधार पर तो बिल्कुल नहीं। वहाँ भी मुर्दों को जलाते हैं, हमारे यहाँ भी जलाते हैं। उनके यहाँ शादी होती है तो परिक्रमा होती है, घूमते

हैं, हमारे यहाँ भी वैसा ही होता है। हम आग के चारों ओर घूमते हैं, वे गुरु ग्रंथ साहिब के चारों ओर घूमते हैं, क्या फर्क पड़ता है। उनके यहाँ भी स्त्रियों में शील पर, पति-पत्नी के सम्बन्धों पर जोर दिया जाता है, हमारे यहाँ भी उस पर जोर दिया जाता है। सिक्ख, जैन और वैदिक धर्मों में कोई खास फर्क नहीं है। नाम भी उनका हमारे जैसा है, कपड़े भी वैसे ही हैं, गाने का तरीका भी वैसा ही है। हमारी सामाजिक गतिविधियाँ और तौर-तरीके भी उनके जैसे हैं। वे भी गुरु को मानते हैं, जमीन पर बैठकर खाते हैं, माने सामाजिक तरीके एक ही हैं। इसलिये सिक्ख, जैन या वैदिक धर्म में झगड़ा नहीं होगा। यह झगड़ा तभी होगा जब कोई राजनीति बीच में आयेगी।

राजनीति के बिना झगड़ा नहीं होता। जैसे बौद्धों और हिन्दुओं का झगड़ा राजनीति की वजह से हुआ। अशोक बौद्ध बन गया और उसने बौद्ध धर्म को राज धर्म घोषित कर दिया। झगड़ा हो गया। भारतीय मानसिकता कभी भी राष्ट्र को धर्म से जोड़ना नहीं चाहती। राजा का कोई धर्म नहीं होता है, उसे तो सब धर्मों को स्वीकार करना पड़ता है। अशोक ने यहाँ बौद्ध धर्म को राष्ट्रधर्म बनाया, उस अनुसार कानून बनाने शुरू किये, तब जाकर बवंडर उठा।

अगर आज कोई कहे कि इस देश का धर्म हिन्दू है, बाकी धर्म गौण हैं तो हंगामा मच जायेगा। कम-से-कम हमलोग तो इसको स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि देखा जाए तो वैदिक धर्म स्वयं में कोई धर्म नहीं है। यह तो विविध विचारों का एक विशाल विश्वकोश है। सभी तरह के विचार और मत उसमें रहते हैं। कोई देवी जी को मानता है तो मांस-शराब सब कुछ चलता है, कोई विष्णु जी को मानता है तो प्याज-लहसून तक घर में नहीं आता। कुछ लोग शिवजी को मानते हैं तो बमबम महादेव चढ़ाते हैं। कोई कहता है दाढ़ी बढ़ाओ, कोई कहता है दाढ़ी मुड़वाओ, कोई कहता है जटा रखो, कोई कहता है लाल टीका लगाओ, कोई कहता है चंदन लगाओ। पंजाब, बंगाल, मद्रास या बिहार के लोगों के अपने-अपने तरीके हैं। अनेकता में एकता ही इस देश का दर्शन है। हमारे देश का सिद्धान्त यही है कि आओ कोई भी धर्मी, आओ कोई भी पंथी, सब के लिये खुला है मन्दिर यह हमारा। केवल इतना है कि ऐसा काम मत करो जो असामाजिक हो।

– 3 जनवरी 1998, रिखियापीठ

साधना और परोपकार

मन को अपना काम करने दो और भावना को अपना काम करने दो, कोई फर्क नहीं पड़ता। असली बात यह है कि भगवान की कृपा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। चाहे कितनी ही साधना करो, कितना ही जप करो, कितना ही ध्यान करो या कितना ही तीर्थ करो, भगवान चाहेगा तो नीच, अधम आदमी को भी दर्शन हो सकता है और भगवान नहीं चाहेगा तो पुण्यात्मा को भी कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन मनुष्य को इस सिद्धान्त से संतुष्टि नहीं होती है क्योंकि उसमें अहंकार है। इस अहंकार के कारण वह साधु-महात्माओं के पास जाता है और साधना खोज लेता है।

जप, ध्यान आदि जितनी भी साधनाएँ हैं, इन्हें मनुष्य अपनी संतुष्टि के लिए करता है। नहीं तो मन कहेगा, 'अरे! तू तो कुछ नहीं करता, खाली बैठा रहता है।' इसलिए मन की संतुष्टि के लिए यह सब करना पड़ता है। अगर कुछ

भी नहीं करोगे तो भी चलेगा, जब उसकी इच्छा होगी तो सब हो जाएगा। 60-65 की उम्र के बाद केवल भगवान पर भरोसा रखो। जो रोज सबेरे समय पर सूर्योदय करता है, समय पर बरसात करता है, समय पर तुम्हारा खाना पचाता है, सुलाता है, वह तुमको दर्शन भी करा देगा, जिसका भी तुम दर्शन चाहोगे और यही है असली भक्ति। भक्ति का मतलब होता है, 'सब कुछ भगवान पर छोड़ देना।'

एक जरूरी बात और है। केवल भगवान का भजन करने से, गुरु का नाम लेने से सब कुछ पूरा नहीं होता है। दुनिया में बहुत दुःख है। दुनिया में बहुत गरीब, भूखे और बीमार लोग हैं। वे भी तुम्हारी ही आत्मा हैं। तुमको उनका ख्याल नहीं आता है क्या? जैसे तुम्हारा हाथ है, नाक है, कान है, वैसे ये सब भी तुम्हारे अंग हैं, विराट् पुरुष के अंग हैं सब। गुरु और भगवान का नाम लिया तो यह आधा काम हुआ। बाकी आधा काम दीन-दुखियों के लिए अपने दिल में करुणा और रहम पैदा करना है।

सब्जी बना दी पर नमक नहीं डाला तो सब्जी बेकार है। हलवा बना दिया, चीनी नहीं डाली, वह भी बेकार है। वैसे ही भगवान का नाम ले लिया, गुरु का नाम ले लिया तो स्वार्थ के लिए हुआ। केवल अपने लिए करते हो। भगवान के नाम से तो परमार्थ होना चाहिए और इसीलिए दुनिया में जितने भी लोग साधना कर रहे हैं किसी की उन्नति नहीं हो रही है। अगर जहर की बोतल को कॉर्क लगाकर सौ साल गंगा जी में डाल देते हो तो क्या होगा? जहर, जहर ही रहेगा, वह अमृत नहीं होगा। ऐसे हजारों-लाखों लोग हैं जो भजन-पूजन करते हैं, अरदास करते हैं, गुरुद्वारे जाते हैं, मंदिर जाते हैं, पर किसको मुक्ति मिली है? किसी को नहीं, क्योंकि वे आधा काम कर रहे हैं, पूरा नहीं। हलवा बना रहे हैं, चीनी नहीं डाल रहे हैं।

दूसरों के लिए करुणा होना बहुत जरूरी है। जैसा तुमको अपने माँ-बाप या भाई-बहन या बेटा-बेटी के लिए दिल में दर्द होता है, प्रेम होता है, वैसा ही दूसरों के प्रति भी होना चाहिए। उसमें फिर त्याग होना भी जरूरी है। त्याग का मतलब क्या होता है? छोड़ना, लेकिन क्या छोड़ना? किसी के पास रोटी नहीं है और हमारे पास चार रोटियाँ हैं तो चलो, दो उसके लिए छोड़ देते हैं। इसको त्याग कहते हैं। दूसरों के लिए अपने हिस्से का कुछ निकालकर देना त्याग है। ऐसा करोगे तो साधना के सब अवरोध गायब हो जायेंगे, गुरुजी का फोटो अपने आप सामने आ जाएगा। बस दिल में रहम होना चाहिए।

हमारे नाना बोलते थे कि अगर जीना है तो दूसरे के लिए जीओ, मरना है तो अपने लिए मर जाओ। माँ कहती थी, मैंने यह किया, वह किया, ऐसा मत बोलो, जो भी अच्छा काम करते हो समुन्दर में डाल दो।

हाँ, इन सब बातों का ख्याल करो, तब रास्ता साफ है।

हम सोचते थे कि ध्यान करेंगे, यह करेंगे, वह करेंगे, लेकिन कुछ कर नहीं पाये तो मन में दुःख है। मन परेशान करता है।

आपका यह सोचना गलत है। दुनिया में जो होता है वह भगवान की इच्छा से होता है, आप की इच्छा से नहीं। मैं सोचूँ कि ऐसा हो वैसा हो, मगर भगवान चाहेंगे तभी होता है। भगवान ने चाहा कि फँसे रहो, तो फँसे रहो। भगवान मुक्त करेगा तो मुक्त हो जाना। और कोई बात नहीं है।

मेरे पति को बीमारी में देखना पड़ता था। एक दिन मेरे पति बोले, 'सोचा था पहले तुम जाओगी तो फूल वगैरह भेजता, मगर अब तो मैं ही जा रहा हूँ।' मैंने कहा, 'भगवान की कृपा हुई तो मैं ही चली जाऊँगी, आप बैठे रहेंगे।' तो वे बोले, 'नहीं, मुझसे अब सहन नहीं होता, कृष्ण भगवान आ रहे हैं मेरे को लेने।' मैंने कहा, 'कृष्ण भगवान अकेले हैं क्या?' वे बोले, 'हाँ! राधा को नहीं लाये हैं।' उसके बाद मेरे से बात नहीं हुई। बच्चों से मिले, फिर चौबीस घंटे कोमा में रहे। गीता का पाठ करके मुँह में दो चम्मच गंगाजल डाला और उन्होंने शरीर छोड़ दिया। क्या सच में मेरे पति को अंतिम समय श्रीकृष्ण का अनुभव हो रहा था?

सबको ऐसा अनुभव नहीं होता है, केवल जिन्हें पूर्ण विश्वास होता है उनको ही ऐसा अनुभव होता है। जब मन में छल-कपट नहीं होता, मन शुद्ध होता है तब ऐसा होता है। मगर यही सोचकर चलो कि भगवान की ऐसी इच्छा थी। भगवान की इच्छा है तो मैं औरत बनी, भगवान की इच्छा है तो मैं मर्द बना। भगवान की इच्छा है तो मैं अमीर रहा या गरीब रहा। ईश्वर की इच्छा ही तुम्हारी इच्छा होनी चाहिए। वही कर्म करता है, वही कर्म कराता है। दुःख-सुख वही देता है और दुःख-सुख वही भोगता है। असली बात यही है।

तुम हिन्दू हो या ईसाई हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। धर्म तो केवल एक संस्थागत ढाँचा है। असली चीज आस्था और श्रद्धा है, पर वह बहुत कम लोगों में होती है। जिनमें होती है वे सब कुछ साफ-साफ देख सकते हैं।

क्या ऐसे लोग विकसित आत्माओं के रूप में लौटते हैं?

ये सब बातें पूछने का क्या प्रयोजन? इन बातों पर चिंता नहीं करनी चाहिए। अगर तुम्हारी भगवान में आस्था है तो चिंता मत करो। बस यही काम की बात है। स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म या शाश्वत जीवन, ये सब बातें अब मेरी समझ में नहीं आतीं। अगर तुम्हें भगवान पर भरोसा है तो यही काफी है। भगवान तुम्हारा ख्याल रखेंगे। अगर तुम्हें स्वर्ग ले जायें तो ठीक, नरक ले जायें तो भी ठीक। तुम्हारा पुनर्जन्म अच्छा हो या बुरा, तुम्हें क्या फर्क पड़ता है? क्यों अनावश्यक चिंता करते हो? तुम अपने रुपये-पैसे, काम-धंधे, जूते-कपड़े, बीवी-बच्चों के बारे में चिंता करते हो, वह अपनी जगह ठीक है, लेकिन आध्यात्मिक जीवन के बारे में चिंता करना फिज़ूल है क्योंकि तुम उसके बारे में कुछ जानते ही नहीं। तुमने केवल किताबों में पढ़ा है, या धर्मों ने तुम्हें सिखलाया है। इस बात की क्या गारंटी कि धर्म सही और सच्चे हैं? धर्मों का संगठन राजनैतिक उद्देश्यों से भी तो हो सकता है। धर्म कभी विशुद्ध नहीं होता, राजा-महाराजा

कई बार इसमें दखल देकर इसे विकृत कर देते हैं। इसलिए धर्मों और धर्मग्रन्थों पर पूरी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता।

बेहतर यही है कि सब कुछ उस अदृश्य ईश्वर पर छोड़ दो। वह जो करना चाहे करने दो। उसने तुम्हें जन्म दिया, एक दिन मृत्यु भी देगा, यह सब उसी पर छोड़ दो। अगर कभी दिल से प्रार्थना करनी भी हो तो यही प्रार्थना करो कि हे प्रभु, मुझे रास्ता दिखाओ। आसन-प्राणायाम जैसे योगाभ्यास तो नासमझ लोगों के लिए हैं। अगर तुम्हारा लक्ष्य भगवान है तो फिर किसी और चीज के बारे में मत सोचो। किसी को अच्छा स्वास्थ्य चाहिए तो किसी को अच्छा मन, उसके लिए आसन, प्राणायाम, नेति, हठयोग वगैरह कर लो, लेकिन जहाँ तक भगवान का सवाल है, किसी तरह की चिंता मत करो। अगर भगवान राजी होंगे तो ये सब चीजें भी दे देंगे।

अपनी बात बोलूँ तो योग ने मेरी मदद नहीं की है। मैंने सभी साधनाएँ की हैं, कुछ नहीं हुआ। केवल ईश्वर में विश्वास काम आया है, यह विश्वास कि वे मेरे साथ हैं। तुम भी यह विश्वास करो कि वे तुम्हारे प्राण हैं, तुम्हारा जीवन हैं, तुमसे कर्म करा रहे हैं, तुम्हें सुख-दुःख दोनों दे रहे हैं, तुम्हें एक अच्छा इंसान बनाया है, तुम्हें एक बुरा इंसान बनाया है, तुम जो कुछ भी हो उन्हीं की कृपा से हो। तुम गरीब हो तो यह ईश्वर की कृपा है, अमीर हो तो यह भी उनकी कृपा है। सुन्दर हो तो यह भगवान की कृपा है, बदसूरत हो तो भी कृपा ही है।

तुम लोग सोचते रहते हो कि मरने के बाद क्या होता है। ये सब व्यर्थ की बातें हैं, इन पर सोचने को कोई फायदा नहीं। मृत्यु के बाद क्या होता है, कौन जानता है, किसने देखा है? आत्मा को आखिर किसने देखा है? इसलिए ज्यादा चिंता न करो, बस एक मनुष्य के रूप में अपने धर्म को, अपने कर्तव्यों को निभाते जाओ। मैं तो यही कहता हूँ, 'भगवान! आपकी मर्जी पूरी हो, जैसा मुझसे चाहोगे, वैसा ही करूँगा।'

यह तो मेरे अपने बुरे कर्मों का फल ही है न कि आज मैं कष्ट भोग रही हूँ?

यह अच्छे या बुरे कर्मों का सवाल नहीं, बल्कि ईश्वर की इच्छा है कि तुम अच्छी औरत हो या बुरी, खूबसूरत हो या बदसूरत, अमीर हो या गरीब, गृहस्थ हो या संन्यासी। तुम ईश्वर की इच्छा का ही परिणाम हो। कर्म की चिंता मत करो। वह केवल दर्शन है, सिद्धान्त है, बुद्धि-विलास है। बुद्धि यथार्थ नहीं है, ईश्वर की इच्छा, ईश्वर की कृपा ही यथार्थ है। हो सकता है मैं बुरा आदमी हूँ,

लेकिन एक अच्छा जीवन बिता रहा हूँ क्योंकि उसकी मर्जी है। हो सकता है मैं बहुत अच्छा आदमी हूँ, पर मेरा जीवन बहुत खराब है, परेशानी ही परेशानी है। यह भी उसी की इच्छा है।

सच्चाई यही है, लेकिन लोग इतने चंचल होते हैं, अहंकार से इतने ग्रस्त होते हैं कि वे कुछ-न-कुछ करना ही चाहते हैं। वे मंदिर जाते हैं, तीर्थयात्रा करते हैं, हर तरह का धार्मिक करतब करते हैं, लेकिन फिर भी संतोष नहीं होता क्योंकि उनकी भगवान में भक्ति और आस्था है ही नहीं। अगर तुम्हारे बच्चे को तुम पर विश्वास न हो तो वह हमेशा रोते ही रहेगा। लेकिन अगर विश्वास है तो फिर कोई परवाह नहीं, उसे मालूम है कि माँ थोड़ी देर में रोटी या मिठाई दे ही देगी। मेरे जीवन का तो यही अनुभव, यही निचोड़ है। मैं जवान आदमी नहीं, करीब अस्सी साल का होने वाला हूँ, और इन सालों में एक ही चीज देखी है – *ईश्वरेच्छा बलीयसी।* कर्म, भाग्य, प्रारब्ध वगैरह के बारे में चिंता करना बेकार है। सब संत-महात्मा यही बोलते हैं – राम रजा, राम की रजा, तुम्हरी गति-मति, तुम ही जानो। जब आदमी का मन दुःखी हो जाय तो उसे यही सोचना पड़ता है कि 'भगवान! तुम्हारी इच्छा थी, इसलिए मन में दुःख आया।'

भगवान दिखते तो हैं नहीं।

तुम्हें गुस्सा दिखता है क्या? मगर अनुभव तो होता है न? काम, क्रोध, लोभ दिखता नहीं है, मगर अनुभव होता है। ऐसे ही भगवान दिखते नहीं हैं, पर उनका अनुभव होना चाहिए। भगवान का अनुभव ऐसा होता है जैसे भय। डर लगता है तो क्या होता है? शरीर में, दिल में अनुभव होता है न? बस ऐसे ही भगवान का भी अनुभव होना चाहिए। उन्हें देखने की चिंता मत करो। मानव जीवन की त्रासदी यही है कि वह भगवान से प्रार्थना तो करता है, मगर उनका अनुभव नहीं करता। भगवान की पूजा होती है, उनके बारे में बातचीत होती है, लेकिन अनुभूति नहीं होती।

आपने कहा कि भगवान की जो इच्छा है वही होवे, लेकिन इंसान को कोशिश तो करनी चाहिए न?

भगवान ने तुम्हें गृहस्थी दी, बाल-बच्चे दिये, काम, क्रोध, लोभ, मोह दिया, दुःख-सुख दिया, जन्म-मरण दिया। उससे भाग तो नहीं सकते, उसको मानना

पड़ेगा ही तुम्हें, कोई दूसरा उपाय तो है नहीं। जीवन से पलायन तो सम्भव नहीं, लेकिन मैं किसी और चीज की बात कर रहा हूँ। मैं कहता हूँ, भगवान का अनुभव करो, बस इतना ही काफी है। अगला जन्म या पिछला जन्म, स्वर्ग या नरक, इस पर चर्चा करना बेकार है क्योंकि न तो तुमने स्वर्ग देखा है, न ही उसे साबित कर सकते हो। स्वर्ग आखिर है कहाँ? तुम चाँद पर जा चुके हो, मंगल ग्रह पर जा चुके हो, लेकिन स्वर्ग कहाँ है? उसके भी आगे? और नरक कहाँ है? स्वर्ग यहीं है, नरक भी यहीं है। सुखी मनुष्य स्वर्ग में है, दु:खी नरक में। मेरे विचार से यही अध्यात्म है, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

– 28 फरवरी 1998, रिखियापीठ

स्वास्थ्य के सरल नुस्खे

हाल में विदेश में किसी कम्पनी ने हल्दी को पेटेन्ट कर लिया। तब भारत ने उसके लिए लड़ाई की और मामला ठीक भी हो गया। हल्दी पर विदेश में कई रोग-विषयक अनुसंधान किए गये हैं, विशेषकर जोड़ों के दर्द में जिसको ओस्टिओ अर्थराइटिज़ या गठिया कहते हैं। हल्दी तो हम लोगों के यहाँ शुरू से एक दवाई की तरह है। हिन्दू धर्म के पूजा-पाठ में आखिर कितनी सारी चीजें उपयोग में लायी जाती हैं। पूजा-पाठ का उतना महत्त्व नहीं है, बल्कि पूजा-पाठ के बहाने लोगों से यह सब कराते हैं, नहीं तो कौन उनका उपयोग करेगा? गाँव के लोग विज्ञान या चिकित्सा के बारे में ज्यादा तो नहीं जानते, लेकिन घाव या चोट लगने पर हल्दी बाँध देते हैं। चाहे हल्दी हो या तुलसी हो, पूजा की जितनी चीजें हैं सब स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। गुजराती लोग तो हल्दी फाँक लेते हैं। विदेश में आठ-दस साल के अंदर हल्दी का बाजार बहुत अच्छा होने वाला है।

इसी तरह नीम पर भी प्रयोग हो रहे हैं। विदेशों में नीम से प्राकृतिक गर्भनिरोधक बनाने का प्रयास कर रहे हैं। चैत्र के महीने में नीम के नये पत्ते

निकलते हैं। चैत्र में एक महीना पूरा सबेरे नीम के पत्ते खा लो, साल भर कोई बीमारी नहीं होती। अब नीम को भी विदेश में पेटेन्ट करना चाहते हैं और वे करेंगे ही, क्योंकि हम लोगों का समाज मुक्त-समाज नहीं है, बंधन वाला समाज है, जबकि पाश्चात्य समाज उन्मुक्त, पढ़ा-लिखा और व्यावहारिक समाज है। वे दो नाव पर सफर नहीं करते, बल्कि एक ही नाव पर सफर करते हैं जो है पैसा। हम लोगों की एक नाव है पैसा और दूसरी नाव है परिवार, फिर दोनों डूब जाते हैं। उनको परिवार की आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं, 'क्या करेंगे परिवार का अगर पैसा नहीं है तो?' उनकी परिवार के बारे में कोई ठोस विचारधारा है ही नहीं। जो पारिवारिक विचारधारा हिंदुस्तान में है, वहाँ नहीं है।

विदेशों में पारिवारिक अवधारणा बहुत व्यावहारिक है। बीवी इटली में रहती है, मर्द पैसा कमाने के लिए अमेरिका चला जाता है। क्या करेंगे? वह यहाँ तलाक दे देगी और अपनी दूसरी शादी कर लेगी। आदमी भी दूसरी शादी कर लेगा। हिंदुस्तान में हमलोगों के लिए यह बहुत बड़ी चीज हो जाती है। आखिर यहाँ जो नौकर खाना बनाते हैं, घर की सफाई करते हैं, वे आठ-दस महीने मालिक के घर में रह जाते हैं न? कई महीनों तक परिवार से मिलने नहीं जाते, मगर पत्नी गाँव में इंतेजार करती रहती है। विदेश में कहते हैं कि जीवन चलाने के लिए, पैसा कमाने के लिए व्यावहारिक अवधारणा की आवश्यकता है। अगर व्यावहारिक नहीं हो तो पैसे की बात ही मत करो।

उन लोगों के पास पैसा है, वे अनुसंधान कर लेंगे किसी-न-किसी रूप में। हल्दी और नीम पर किया है, इसके अलावा और बहुत-सी चीजें धीरे-धीरे उनकी नजर में आ रही हैं। अभी तक तो उन्होंने हमारे विश्वासों को धार्मिक विश्वास समझकर नजर अंदाज करके रखा था। जैसे अपने यहाँ हमलोग तुलसी को देवी मानकर पूजते हैं। उनका धर्म कहता है कि भगवान तो निराकार है जबकि तुलसी तो मात्र एक पौधा है। अब उनकी समझ में आ रहा है कि तुलसी को इसीलिए पूजते हैं कि उसमें औषधीय गुण हैं। पेनीसिलीन नामक एन्टीबायोटिक तुलसी से बनता है। हरिद्वार में हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक के लोग हजारों एकड़ जमीन में तुलसी उगाते हैं और उससे पेनीसिलीन बनाते हैं। तुलसी का तेल भी बहुत उपयोगी होता है।

इसी तरह अब स्वमूत्र याने आदमी के अपने पेशाब पर प्रयोग हो रहे हैं। उसमें से लोगों ने यूरीकोज़ नाम का रसायन निकाला है जो हृदयाघात में बहुत प्रभावशाली होता है। कई देशों में अब लोग पेशाब इकट्ठा करते हैं और वहाँ

बिकता है। हमलोगों के शास्त्रों में, विशेषकर डामर तंत्र में अमरोली क्रिया का वर्णन है। अपना पेशाब कैसे पीना चाहिए, कैसे शरीर पर लगाना चाहिए, कैसा बर्तन होना चाहिए, कौन-सा मंत्र बोलना चाहिए, किस वक्त लेना चाहिए, क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए – यह सब विस्तार से लिखा है। अब विदेशियों ने इसे अपनाया है, जबकि हमलोग अपना पेशाब नहीं पी पाते हैं क्योंकि उस से दुर्गन्ध आती है। वे लोग कहते हैं, ठीक है बास आती है, पर उससे क्या फर्क पड़ता है, रसायन में तो कोई गंध है नहीं। अब कैप्सूल के बाहर चमकते हुए खोल को ले लो, वह क्या चीज है? वह जानवरों की हड्डी से बनता है। इन्सूलिन कैसे बनता है? सूअर से। जब इनसे परेशानीं नहीं तो पेशाब से परेशानी क्यों? हमारे पेशाब में अमोनिया होता है जो डिटर्जेन्ट की तरह काम करता है। पीने से आँतों को साफ करता है, बदन पर मालिश करो तो बदन साफ होता है, पुरानी त्वचा निकल जाती है।

लहसुन गठिया और अर्थराइटिज़ के लिए अच्छा है। यूरिक एसिड एक रसायन है जो जोड़ों में इकट्ठा हो जाता है, फिर वहाँ दर्द होता है। लहसुन से यूरिक एसिड की मात्रा घटती है। गठिया वाले लोगों को दूध पर भी नियंत्रण रखना चाहिए। दूध में कैल्शियम बहुत होता है। उसके बदले दही, छेना या मट्ठा ले लेना चाहिए। दही खून के कॉलेस्ट्रोल को काटता है। सादा दही अच्छा है, मीठा दही कफ को बढ़ाता है। सबसे अच्छा तो है कि दही में थोड़ा नमक, थोड़ा भूंजा हुआ जीरा डाल कर ले लो। मेथी भी जोड़ों के लिए अच्छी है, मगर गरम होती है।

मेथी पाइल्स के लिए भी अच्छी है क्या?

पाइल्स के लिए सबसे अच्छा है, मट्ठा या छाछ। दूसरी चीज है, गुलाब की पंखुड़ियाँ पकते हुए चावल में डाल दीजिए फिर उसको खाइए। पाइल्स कोई स्वतंत्र बीमारी तो है नहीं, यह कब्ज से होती है। हमलोग बचपन में जब मेडिकल पढ़ते थे तो एक ड्रामा करते थे – 'मिस्टर कॉन्सिटिपेशन एंड मिसेस पाइल्स', ये दोनों मियाँ-बीबी हैं। जहाँ कब्ज होगा, वहाँ पाइल्स होगा। पाइल्स को दूर करना है तो कब्ज को दूर कीजिए। कब्ज को दूर करने के लिए बहुत-से उपाय हैं। जिन लोगों के पास गुलाब हैं वे गुलकंद भी बनाकर खा सकते हैं, बहुत फायदा करता है।

– 2 मार्च 1998, रिखियापीठ

महिलाओं की शिक्षा और उत्थान

विदेशों की लड़कियाँ लड़कों के ही बराबर हैं। वे जब आश्रम आती हैं तो आने के एक घंटे बाद सारा काम कर लेती हैं। उनको किसी प्रशिक्षण की जरूरत नहीं पड़ती। ऑफिस का काम, कम्प्यूटर का काम, गाड़ी-ट्रक चलाने का काम, बैंकिंग का काम – सब कर लेती हैं, उनको बतलाने की जरूरत नहीं पड़ती। स्वामी सत्संगी भी विदेश में रही है, उसके लिए कोई भी काम असम्भव नहीं है। ऐसी संस्कृति अच्छी है, जबकि हिंदुस्तान में हमलोगों का एक पैर ठीक है और एक पैर लंगड़ा है। औरत बहुत कमजोर हो गई है, वह अपने को सम्भाल नहीं सकती है। औरत को मजबूत करना होगा। हमसे लोग पूछते हैं, 'यहाँ गरीबी क्यों है?' हम कहते हैं, 'तुम्हारा एक पैर तो लंगड़ा है। क्या काम करोगे?' यहाँ की औरतें नौकरानी की तरह घर में रहती हैं। शहरों में जो नया मध्यम वर्ग है, वह तो देहातियों से भी बदतर है। देहाती औरतें तो मजदूरी के लिए जाती हैं, पाँच-छ: सौ रुपया महीने का कमा लेती हैं, पर शहरी औरतें तो घर में अचार-चटनी ही बनाती रहती हैं।

पढ़ी-लिखी लड़कियाँ बाहर में जाकर पाँच-छ: हजार रुपया कमायें, तब जाकर परिवार का स्तर बढ़े। पर लोग डरते हैं कि समाज क्या कहेगा। अरे! समाज नाम की कोई चीज नहीं है। समाज तो हमारी सनक है, हमारा भय है।

आखिर समाज करेगा क्या? ज्यादा-से-ज्यादा चार-पाँच दिन तक तुम्हारे बारे में कुछ बोलेगा, और क्या? समाज तुमको खिलाता-पिलाता नहीं, कुछ तो नहीं करता। आज हम करेंगे तो कल तुम भी करोगे। स्त्री को पढ़ाना चाहिए। उसको उपार्जन योग्य बनाना चाहिए क्योंकि कलियुग का पुरुषार्थ है अर्थ और काम। धर्म और मोक्ष इस युग के पुरुषार्थ नहीं हैं। पैसे के बिना आदमी आज एक कदम भी आगे नहीं चल सकता है।

हिन्दुस्तान के गाँवों में, खास करके इस रिखिया क्षेत्र में बीमारियाँ ज्यादा नहीं हैं। एक ही बीमारी है, टी.बी.। माँ-बाप को, बच्चों को, प्रायः सबको यही बीमारी है। इसका तो निश्चित इलाज है, कुछ खास करने की जरूरत नहीं है। यहाँ तीन-चार सौ लोगों को टी.बी. था, दवा से बहुत अच्छा परिणाम मिला है। बाकी बीमारियाँ पेट खराब होना, खुजली, फोड़ा, बुखार आदि हैं। कहने का मतलब कि बहुत बड़ी बीमारियाँ इन लोगों को नहीं हैं। साफ-सफाई तो ज्यादा है नहीं इनके यहाँ, और भोजन की भी दिक्कत है क्योंकि रोजी मिलती नहीं है और यदि रोजी मिलती भी है तो उसमें से ज्यादा हिस्सा आदमी शराब पी जाता है। टी.बी. केवल भारत में ही नहीं, अमेरिका में भी है। यहाँ टी.बी. का मुख्य कारण है कुपोषण। अमेरिका में लोग खूब खाते हैं, उनको भी टी.बी. होता है। क्यों होता है? इसका कारण आनुवंशिक भी है।

हिन्दुस्तान के गाँवों में जो मजदूर वर्ग है, निम्न वर्ग है, इसके पास साधनों की बहुत कमी है। शौच के लिए इनको दूर खेत में जाना पड़ता है, नहाने के लिए दूर नदी-तालाब जाना पड़ता है और पानी लेने के लिये कुएँ जाना पड़ता है। बहुत गंदगी में रहते हैं, हम तो इन लोगों के बीच बहुत रहे हैं। इनके जब बच्चे पैदा होते हैं तो साफ-सफाई न होने के कारण संक्रमण हो जाता है। जीवन के साधन इनके पास नहीं हैं, इसीलिए इनके यहाँ ज्यादा बच्चों की प्रथा है, दस में से दो तो बचेंगे।

दूसरी बात यह कि ये लोग लड़की की शादी में बहुत पैसा खर्च कर देते हैं। सोचते हैं कि लड़की को घर से जल्दी हटाओ, सिर का बोझ समझते हैं। यह नहीं समझते कि लड़की को लड़के की तरह प्रशिक्षण दिया जा सकता है, उसको पढ़ाया जा सकता है। दूसरे के घर में जाकर क्या करेगी? नौकरानी की तरह काम ही तो करेगी। वास्तविकता क्या है? वह एक दासी है, उसको सबकी बात सुननी पड़ती है। लेकिन स्त्री भी तो एक जीव है, तुम्हारी और मेरी तरह। उसके अपने सपने होने चाहिए, उसके भी अपने कुछ अरमान होंगे।

वह भी कुछ चीजों को देखकर ललचाती होगी। इन सब चीजों को ये लोग देखते नहीं हैं। बस अपनी लड़कियों को जल्दी घर से निकालना चाहते हैं, सोचते हैं पता नहीं क्या हो जाएगा।

पूरे एशिया में जो गरीबी, भूखमरी, अंधकार और अशिक्षा है, उसका मुख्य कारण स्त्री की हालत है। अमेरिका इतनी जल्दी क्यों उठा? इसलिए कि उन लोगों के पास कोई विकल्प ही नहीं था। वहाँ तो वे लोग उपनिवेश के लिए गए थे। उनकी औरतों को, उनके लड़के-लड़कियों को काम करना पड़ता था। इसलिए वे जल्दी उठ गए। अगर आदमी के दो पैर मजबूत हो गए तो वह ज्यादा आगे बढ़ेगा और एक पैर से लंगड़ा होगा तो कम दौड़ेगा, वहीं पड़ा रहेगा।

स्त्री और पुरुष परिवार के दो पहिए होते हैं। दोनों के आधार पर चलता है परिवार। अब औरत को घर में बैठाकर रख लिया तो क्या करेगी वह बेचारी मन लगाने के लिए? दिनभर कभी आम का अचार बनाएगी, कभी आम का मुरब्बा बनाएगी, कभी आम का पापड़ बनाएगी। दिन तो काटना है, मन लगाना है, दाल-भात बनाने में तो दस मिनट लगते हैं। मैं अपना खाना खुद बनाता हूँ। मेरे को रोटी, सब्जी, दाल और चटनी, ये चार चीजें बनाने में आधा घंटा लगता है। उसमें चार-पाँच जन भी खा सकते हैं। मगर यदि समय काटना होगा तो दिनभर कुछ-न-कुछ करते रहना होगा – करेले को छिलेंगीं, तो उसे गरम करेंगीं, उसमें कुछ ठूँसेंगीं, इस तरह दिनभर अपना टाइम पास करती हैं। अब पढ़ी-लिखी लड़कियों से यह नहीं हो पाता है। जो बी.ए. या एम.ए. पास हैं उनके लिए यह सब कुछ दिन तक ही चलेगा। फिर दो-तीन साल में उनका

मन भर जाता है। उसके बाद नीरसता और बोरियत शुरू हो जाती है जिसकी वजह से उनको अवसाद होने लगता है। अवसाद होने से कभी सिर में दर्द है तो कभी पैर में दर्द है तो कभी कमर में दर्द है। यह सब अवसाद की वजह से होता है, ऐसी मनोवैज्ञानिकों की राय है।

जो पढ़ी-लिखी लड़की है, जिसने शेक्सपीयर पढ़ा हो, दुनियाभर का इतिहास जानती हो, भूगोल और राजनीति जानती हो, जो बात कर सकती है, अखबार पढ़ती है, उसके लिए कितना मुश्किल हो जाएगा? दो-तीन साल घर में निकाल सकती है, लेकिन उसके बाद मुश्किल होती है। जो औरतें बड़े शहरों में रहती हैं, वे बागवानी में लग जाती हैं, कोई सामाजिक कार्य करती है, कोई लाइब्रेरी में जाती है, कोई गाँव-गाँव जाकर सेवा करती है, कोई महिला सभा में चली जाती है। इस तरह से वे अपना वक्त गुजार लेती हैं। आखिर उनके भी दिल और दिमाग में वही सपने और अभिलाषायें हैं जो एक पुरुष में हैं।

जब वे देखती हैं कि एक तरफ तो धर्म कहता है पति और सास-ससुर की सेवा करो और दूसरी तरफ समाज कहता है सिर पर पल्लू रखना चाहिए, टीका लगाना चाहिए, गले में एक कंठी रहनी चाहिए, तब वे सोचती हैं कि इस परिवेश में मुझे नहीं रहना है, मुझे यह सब पसंद नहीं है, मैं ऐसी जिंदगी नहीं जी सकती। तब जाकर अवसाद होता है। लड़कियों को जो अवसाद होता है उससे प्राय: उनकी माहवारी अनियमित हो जाती है। इसका असर संतान पर, स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों पर पड़ता है। तब पुरुष शादी के बाहर सम्बन्ध जोड़ता है या शाम के क्लब का मेम्बर बन जाता है। क्लब का मेम्बर क्यों बनता है? बीवी के साथ मन लगता ही नहीं है। वह तो जानता नहीं है कि बीवी के साथ मन क्यों नहीं लगता, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण नहीं किया है।

इसलिए स्त्रियों को घर से बाहर निकलना चाहिए, सार्वजनिक जीवन में रहना चाहिए और अपने मन को किसी सकारात्मक, रचनात्मक दिशा में लगाना चाहिए। चाहे वे लेख लिखें, कविता लिखें, गाना गायें, सार्वजनिक कार्यक्रम में जायें, नृत्य सीखें या बैंक-कॉलेज में नौकरी करें। मुम्बई में तो लड़कियाँ टैक्सी-ड्राइवर का काम भी करती हैं। विदेशों में तो लड़कियाँ सब काम करती हैं, गाड़ी चलाती हैं, पुलिस में भी हैं, पेट्रोल भराने जाओ वहाँ भी हैं, दुकान-कारखानों में, सब जगह लड़कियाँ हैं। वहाँ आदमी और औरत में सामाजिक स्तर पर कुछ अंतर नहीं है, दोनों समान हैं।

– 2 मार्च 1998, रिखियापीठ

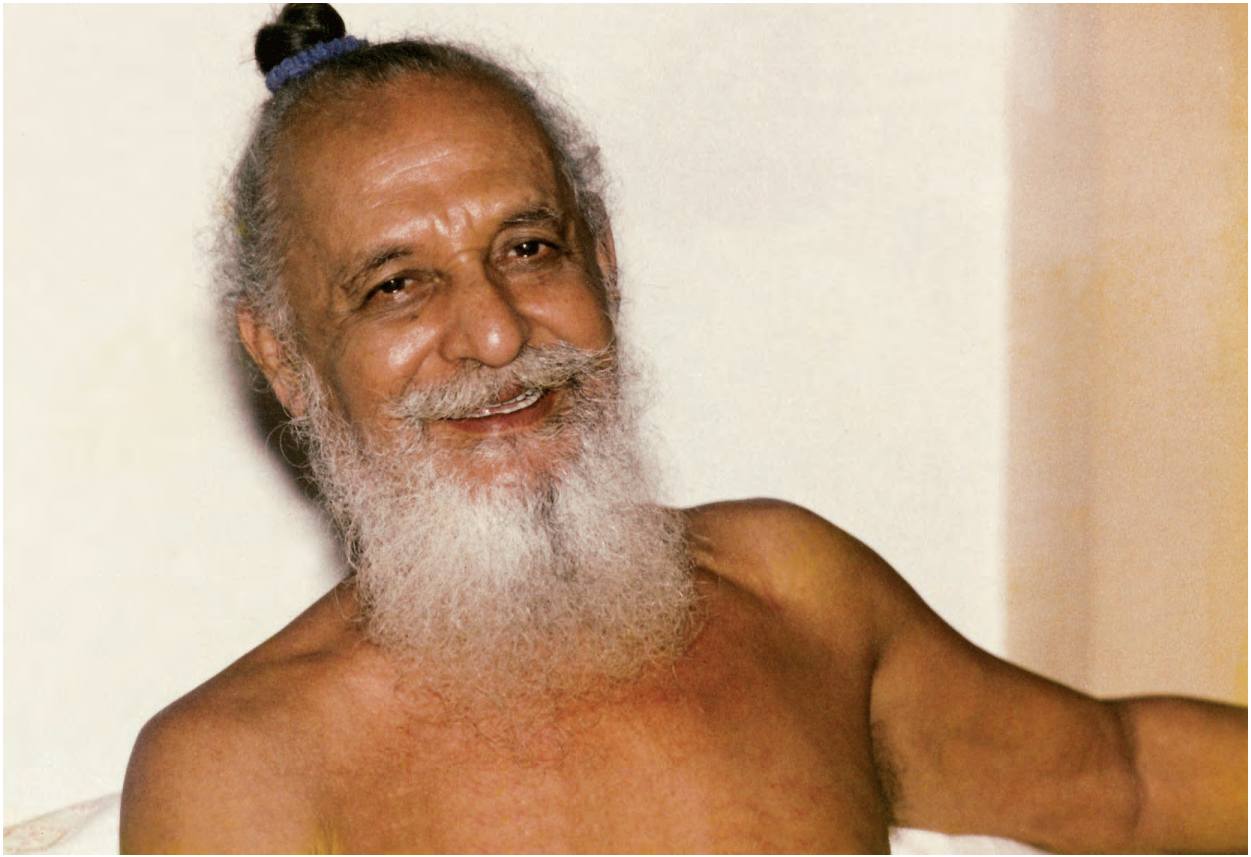

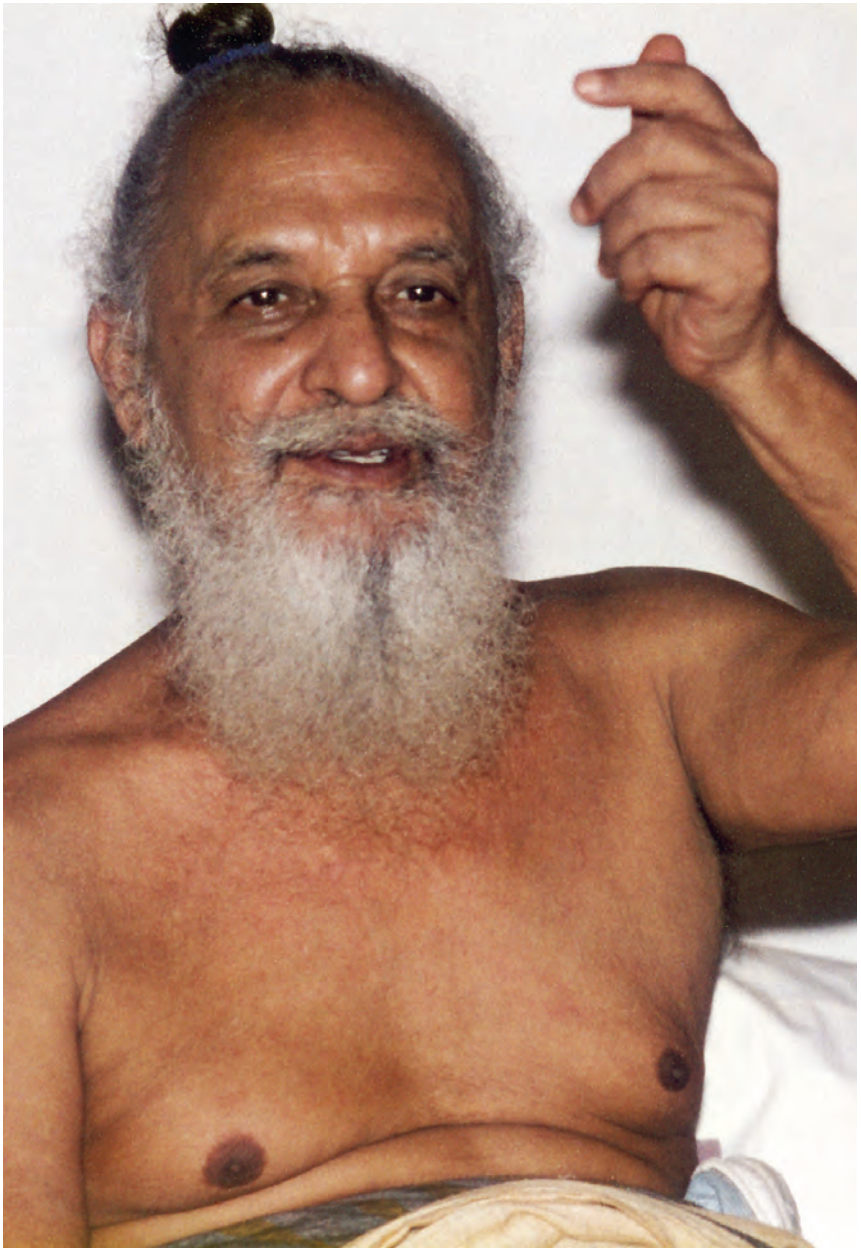

सत्यम् वाणी

यहाँ हम किसी से मिलते नहीं हैं। हमारा नियम है, न हम मिलते हैं, न ही उपदेश देते हैं और न ही किसी से कुछ लेते हैं। हम एकान्त में कुटिया बनाकर रहते हैं। यह हमारा आश्रम नहीं है। अगर आप ऐसा सोचते हैं तो यह आप की गलतफहमी है। उधर कोने में हमारी एक कुटिया है जिसमें हम रहते हैं। यह बैठकी है इन लोगों की, हम आकर बैठ जाते हैं कभी-कभी। मगर मिलने का हमारा कोई रिवाज नहीं है।

हमारा मन ही नहीं करता है किसी से मिलने का। आप लोगों के साथ चालीस-पचास साल रहते-रहते बहुत निराशा हुई है। आप लोग एक तरफ से मुँह साबुन से साफ करते हैं, फिर काला करते हैं, फिर साफ करते हैं। हृदय को शुद्ध तो कोई करता नहीं, सोचने का तरीका कोई बदलता नहीं, रहने का तरीका कोई बदलता नहीं, खाने का तरीका कोई बदलता नहीं और फिर भी सब कुछ ठीक-ठाक चाहते हैं। वह नहीं हो सकता। कुत्ते की पूँछ टेढ़ी की टेढ़ी रहेगी, इसलिए हम कहते हैं कि टेढ़ी ही रहने दो। अपने को सीधा करने का कोई प्रयत्न नहीं करता है। अब हम यहाँ एकान्त में आ गए हैं और किसी को आध्यात्मिक पथ का मार्गदर्शन नहीं देते हैं, लौकिक मार्ग का भी नहीं। हम किसी से मिलते भी नहीं हैं। हमने ठान लिया है कि हमें किसी को कुछ समझाना ही नहीं है, क्योंकि कुछ फर्क पड़ने का नहीं है।

पहले की बात अलग थी, उस वक्त हम संस्था के अध्यक्ष थे। जब हम संस्था के अध्यक्ष थे, उस वक्त हमें संस्था का दायित्व निभाना पड़ता था, एक कर्तव्य था। जब तुम किसी विभाग में काम करते हो तो वहाँ का काम-काज तुम्हें करना पड़ता है, क्योंकि तुम्हारा कर्तव्य है। अभी हमें संस्था से कोई मतलब नहीं है। स्वतंत्र रूप से रहते हैं, न कोई आश्रम है, न शिष्य। कुछ सिखाते भी नहीं हैं। हम क्या सिखायेंगे? उम्र तो हो ही गयी है। अब एकान्त में रहते हैं।

दुनिया को, आदमी को कोई बदल नहीं सकता। मनुष्य को कुछ प्राप्त करना है तो खुद अपने प्रयत्न से ही करना होगा। मनुष्य चाहे तो अपने को बदल सकता है, चाहे भक्ति से, ज्ञान से, त्याग से या किसी और साधन से। कोई दूसरा मदद नहीं कर सकता। कुत्ते की पूँछ टेढ़ी है, वह टेढ़ी ही रहेगी।

कुत्ता चाहे तो सीधा कर सकता है, दूसरा उसको सीधा नहीं कर सकता। हमने पचास साल तक करने के बाद सब छोड़ा। हमने कहा, 'नहीं, बेकार में क्यों सिर मारो इन लोगों के साथ। कोई तो बदलता नहीं है।'

आप जैसे योगी के यहाँ रहने से हमारा भारतवर्ष तो धन्य हो गया।

यह सब हम नहीं जानते। हम न योग सिखाते हैं, न वेदान्त। हम तो हिन्दुस्तान के अस्सी करोड़ लोगों में से एक हैं जो यहाँ एकान्त में रहते हैं। हमें अपने बारे में कोई भ्रम नहीं है। हम आप जैसे आदमी हैं। जैसे आप माँ के पेट से पैदा हुए, हम भी माँ के पेट से पैदा हुए। जैसे आप एक दिन दुनिया छोड़कर चले जायेंगे, वैसे हम भी एक दिन दुनिया छोड़कर चले जायेंगे। जैसे आप खाना खाते हैं, वैसे हम भी खाना खाते हैं। जैसे आप सोते हैं, वैसे हम भी सोते हैं। जैसे आप बोलते हैं, वैसे हम भी बोलते हैं। जैसे आप दो पैरों पर चलते हैं, हम भी दो पैरों पर चलते हैं। कोई फर्क नहीं है। बस इतना फर्क है कि हमने ज्यादा किताबें पढ़ी हैं, आपने कम पढ़ी हैं। और कोई फर्क नहीं है। इसलिए जो कुछ प्राप्त करना है अपने अन्दर से खुद प्राप्त करो।

काकभुशुण्डि ने कलियुग के गुण-अवगुण बतलाते हुए कहा है कि कलियुग में दो गुण हैं – पहला तो यह कि भक्ति से भगवान सरलता से मिलते हैं और दूसरा, मानसिक कर्म का कोई फल नहीं होता। तो जो हम मन में सोचते हैं, उसका असर क्या सतयुग और त्रेतायुग में पड़ता था?

देखिये, कलियुग में कोई भी आदमी अच्छी बात तो सोचता ही नहीं। हमेशा चिंता, पैसा, शादी, तरक्की, बीमारी, बदनामी, लोभ, काम और क्रोध ही चलता है। चौबीस घण्टे जब मन में वही रहता है तो भगवान ने कानून बदल दिया होगा। जो आदमी चौबीस घण्टे गलती करता रहे उसे तो बहुत बड़ी सजा हो जायेगी। इसलिये कलियुग में कानून बदला है कि मनुष्य अगर मन में कुछ बुरा चिंतन या पाप करता है तो उसका कोई फल नहीं होता। '*मानस पुण्य होहिं नहीं पापा*' – कलियुग में मन में जो भी तुम अच्छा या बुरा विचार करते हो, उसमें पुण्य भी नहीं, पाप भी नहीं। जैसे काले कपड़े पर कितना भी धब्बा डाल दो, दिखता नहीं है, वैसे ही यह कलियुग भी काला कपड़ा है।

सतयुग सफेद कपड़े की तरह है। उसमें एक भी दाग लग गया तो दिखाई देता है। सतयुग और त्रेतायुग में मानसिक पाप-पुण्य का फल मिलता था, पर कलियुग में मानसिक पाप-पुण्य का फल नहीं मिलता। ये सब हम सामान्य ढंग से कह रहे हैं, लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान में कहा गया है कि आदमी जैसा विचार करता है, वैसे ही उसके अवचेतन मन में संस्कार बनते हैं, वैसी ही उसके अन्दर रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। जैसे तुम अगर डरोगे तो तुम्हारी एड्रीनल ग्रन्थियाँ रस बहायेंगी। मन में चिंता होगी नौकरी की, पैसे की, बेटे की, बेटी की, तो तुम्हारी एसीडिटी बढ़ेगी। यह मानसिक प्रक्रिया की स्वत: होने वाली शारीरिक प्रतिक्रिया है, इसको विज्ञान में बहुत विस्तार से बतलाया गया है।

काम, क्रोध, लोभ आदि के मन में आने से शरीर में क्या-क्या परिवर्तन आते हैं? मनोविज्ञान कहता है कि असर जरूर होता है। मनुष्य पर विचारों का, चाहे वे अच्छे विचार हों या बुरे विचार, उसके शरीर और मन पर असर पड़ता है। उसके व्यवहार पर भी उसका असर होता है। जैसे एक लड़का पढ़ता है तो सोचता है कि कलेक्टर बनेंगे, कमिश्नर बनेंगे, फिर ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे, लेकिन बी.ए. में फेल हो जाता है। दूसरी बार भी फेल हो जाता है तो उसे नर्वस ब्रेकडाऊन हो जाता है। ऐसा क्यों हुआ उसको? इसलिए कि उसने बहुत लम्बी छलांग लगाने के बारे में सोचा, जबकि वह चल भी नहीं

सकता था। जो आदमी बहुत ज्यादा इच्छा करता है, उसे बहुत ज्यादा निराशा होती है और निराशा का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। मस्तिष्क अवसाद में चला जाता है। अवसाद का मतलब होता है कि मस्तिष्क का वोल्टेज डाउन हो जाता है। उसी की वजह से हृदय पर असर पड़ता है, फिर सारे शरीर पर उसका असर पड़ता है।

अवसाद बहुत लोगों को होता है। आजकल वे एंटी-डिप्रेशन की दवाइयाँ लेते हैं। बहुत लोग शराब पीते हैं, किसी की कुछ और बुरी आदत होती है। मनुष्य के विचारों का तो असर होता ही है, अच्छे का भी और बुरे का भी। दान-पुण्य करने का विचार करोगे तो उसका भी असर होगा और पाप करने का विचार करोगे तो उसका भी असर होगा। फर्क यही है कि किसी विचार या इच्छा का परिणाम अवसाद होता है।

मन में हम जो कुछ सोचते-करते हैं, उसका शरीर पर तो असर पड़ता है, पर उस कर्म का फल यहीं पर मिल जाता है क्या?

आज किये गये कर्म का फल आज या कल ही मिलेगा, यह कोई जरूरी तो नहीं है। आज के कर्म का फल कल भी मिल सकता है, दस साल बाद भी

या अगले जन्म में भी मिल सकता है। आज अगर तुम पालक और कटहल लगाओ तो पालक डेढ़-दो महीने में मिल जाएगी, पर कटहल को आने में दो-तीन साल लगेंगे। हर कर्म के पकने की अवधि अलग रहती है। किसी कर्म का फल तुरन्त मिलता है, किसी कर्म का फल देरी से, और कर्म के फल भी एक सरीके नहीं होते।

कुछ कर्मों का फल सामाजिक और आध्यात्मिक, दोनों होता है। एक आदमी ने चोरी की, उसे छः महीने या एक साल के लिए जेल में डाल दिया गया। वह भी तो फल ही है, मगर वह सामाजिक परिणाम है, आध्यात्मिक नहीं। एक आदमी ने किसी से उधार लिया, नहीं चुकाया तो मामला दर्ज हुआ, जुर्माना हो गया, नहीं अदा कर पाया तो जेल में डाल दिया। एक-डेढ़ साल वह जेल में रहा, उससे उसके कर्म का फल पूरा नहीं हुआ। वह तो उसने एक सामाजिक गलती की थी, उसका फल मिला है। मगर उसने जिस व्यक्ति से कर्जा लिया था और नहीं चुकाया था, वह व्यक्ति किसी अगले जन्म में कर्जा वसूलने उसका बेटा या बेटी बनकर आयेगा।

बेटा-बेटी या पति-पत्नी जैसे जो बहुत नजदीक के सम्बन्ध हैं, ये पूर्व जन्मों के हैं। असल में ये सब अपना-अपना हिसाब-किताब बराबर कर रहे हैं। ये पूर्व जन्म के कर्जदार हैं जो अपना कर्जा बरोबर करने के लिए आते हैं। अब बेटा क्या है? बाप ने कर्ज लिया है और अब दे रहा है बेटे को, दस हजार, बीस हजार, तीस हजार, चालीस हजार, पचास हजार। वह बदमाशी करता है, तब भी दे ही रहा है। इसलिए बड़े-बूढ़े कहते हैं कि बेटा अपना कर्जा वसूल रहा है। इस तरह कर्म का आध्यात्मिक फल अगले जन्म में भी मिल सकता है और इस जन्म में भी, मगर जो सामाजिक परिणाम है वह तो तुम सामने देखते ही हो।

जैसा अन्न वैसा मन, इस बात में कितना सत्य है?

देखिये, बंदर शाकाहारी होता है, लेकिन बड़ा चंचल होता है। बंदर में कोई गुण नहीं है, किसी के काम नहीं आयेगा, खाली मदारी के काम आता है। सब गड़बड़ करेगा, यहाँ कुछ रखोगे तो तोड़ देगा। दूसरी ओर कुत्ता होता है मांसाहारी, पर सब गुण हैं उसमें। वह स्वामीभक्त और समझदार होता है, गंध से आदमी को पहचान लेता है, चोर-डाकू को पकड़ लेता है, आदमी के विचारों तक को सूंघ लेता है, कितना मेधावी होता है! साथ ही बड़ा

संतुष्ट रहता है, जो दोगे खा लेगा। इसलिए जैसा खाना खायेंगे, वैसा ही मन बनेगा, यह कोई जरूरी नहीं है।

हमारे यहाँ हिन्दुस्तान में बहुत शाकाहारी हैं और यूरोप में सब मांसाहारी हैं, लेकिन जितना सामाजिक न्याय या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता वहाँ है, उतनी हमारे यहाँ नहीं है। वहाँ जो बेरोजगार हैं, उनकी सरकार मदद करती है, समाज मदद करता है। वे पैसे के बारे में ज्यादा नहीं सोचते। पैसा उनके यहाँ कोई बड़ी चीज नहीं है, जबकि हमारे यहाँ पैसे को दांत से पकड़ते हैं। पैसे के बारे में जो भावना हमारे मन में है, वह उनके मन में नहीं है। उनके यहाँ लड़के-लड़कियाँ आपस में मिलते-जुलते हैं, घूमते-फिरते हैं, मगर कभी मर्यादा भंग नहीं होती। अपने यहाँ के लड़के-लड़की दो घण्टे साथ बैठें तो मर्यादा भंग हो जाती है। नियंत्रण ही नहीं है। तब कैसे कह सकते हो कि मांसाहार से शाकाहार श्रेष्ठ है?

घोड़ा शाकाहारी है और साथ ही स्वामीभक्त एवं उपयोगी भी। हम किसी पक्ष की तरफदारी नहीं कर रहे हैं, अनुभव पर आधारित व्यावहारिक बात बोल रहे हैं। इस विषय को सही दृष्टिकोण से देखना होगा। देखा जाए तो मांसाहार मानव स्वास्थ्य और शरीर के लिए अच्छा आहार नहीं है। शेर, चीता, बाघ और तेंदुआ जैसे जितने भी मांसाहारी जानवर हैं, ये शुद्ध मांसाहारी जानवर हैं। ये कभी भी किसी दूसरे मांसाहारी जानवर को नहीं खायेंगे। केवल उस

जानवर का माँस खायेंगे जो शाकाहारी हो, क्योंकि शाकाहारी जानवर का शरीर शुद्ध रहता है, विषरहित होता है। जो मनुष्य शाकाहारी भोजन करता है, उसके शरीर में विषाक्त पदार्थ और जीवाणु नहीं होते। यदि होते भी हैं, तो बहुत कमजोर होते हैं। इसलिए मांसाहारी जानवर केवल शाकाहारी जानवर का ही भोजन करेंगे, जैसे खरगोश, हिरण, ऊँट, बकरी आदि। कोई शेर मरा हो तो दूसरा शेर उसको छुएगा तक नहीं, क्योंकि वह विषाक्त है। मांस खाने से शरीर में विष अधिक होता है, ऐसा अनुभव से लगता है।

केवल दो-तीन जीव ही ऐसे हैं जो निषिद्ध मांस का सेवन करते हैं – कौआ, गिद्ध और सियार। इसलिए इन सबको लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कौए को चंडाल पक्षी कहते हैं, महा गंदे माने जाते हैं क्योंकि वे अखाद्य मांस भी खाते हैं। मांसाहारी जानवर जब मर जाता है तो वह अखाद्य हो जाता है। शाकाहारी जानवर जब मर जाता है तो वह खाद्य रहता है। शाक-सब्जी से शरीर में विपरीत अवस्थायें और रोग कम पैदा होते हैं।

अब रही बात मनुष्यों में मांसाहार की। हमारे प्राचीन ग्रंथों और शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि हमारे समाज का जो सबसे ऊँचा वर्ग था, ब्राह्मणों का, वह मांसाहार करता था। जब-जब यज्ञ होते थे उनको बुलाया जाता था, तब मृगमांस रांधा जाता था। ये कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। रामचन्द्र जी जब जंगल गये तो वहाँ मांसाहार करते ही थे, यह तो नहीं लिखा है, मगर इतना तो लिखा है कि वे आखेट करते थे।

कहने का मतलब यह कि हमलोगों को इस बात पर लकीर का फकीर नहीं होना चाहिए कि मांसाहार से मनुष्य की वृत्ति बदल जाती है। सरदार लोग मांस खाते हैं, पर देखो कितनी भक्ति है उन लोगों में! हर एक सरदार जी नियम से गुरुद्वारा जायेगा, उसके लिए अलग से पैसा निकालेगा, भगवान की भक्ति करेगा। विदेशों में हम जाते थे, सरदार लोगों को पता चलता था तो दौड़कर आते थे साधु-महात्मा की संगत करने। इसलिए हम कहते हैं कि मांस का मनुष्य की वृत्ति पर कोई सीधा असर देखने को नहीं मिलता है। जापान के लोग सब मछली खाते हैं, पर वे अपने धर्म पर कायम रहते हैं। पूजा-पाठ उनका सब चलता है। हिन्दुस्तान में भी जितने मैथिल ब्राह्मण हैं, प्राय: सब मांसाहारी हैं। आसाम में भी बहुत मांसाहारी हैं।

मांसाहार का शरीर पर असर पड़ता है, यह हम मानने के लिए तैयार हैं, परन्तु मन, स्वभाव और आचरण अलग बात है। यूरोप में तो मांस के अलावा

कुछ खाते ही नहीं हैं, मगर उनकी जीवनशैली देखो, स्त्रियों के प्रति उनका भाव देखो, धन के प्रति उनका भाव देखो, समाज-सेवा के प्रति उनका भाव देखो, निःसंदेह श्रेष्ठ है। हमलोगों ने आज तक अपनी औरतों को आजादी नहीं दी, यह सोचकर कि रसोई और घर कौन देखेगा। हम शोषण कर रहे हैं महिलाओं का, पर उन लोगों ने अपनी महिलाओं को स्वतंत्र किया है। औरत तुम्हारा घर चलाने के लिए नहीं बनी है, उसे भी स्वतंत्र रहने का पूरा अधिकार है। स्त्री की उतनी ही पहचान है जितनी पुरुष की। दोनों एक समान हैं। यदि दोनों समान हैं तो उसे स्वतंत्र भी होना चाहिए, उसके लिए समान अधिकार और कानून होने चाहिए। हिन्दुस्तान में ऐसा कहाँ है? कहीं नहीं है। गाँवों में जाओ, सब पंडित और पुरोहित लोग बैठे हैं, और घर के अंदर अपनी औरतों से नौकरानी की तरह काम कराते हैं। पुरुषों को समझ में ही नहीं आता। ऐसे में शाकाहार से कोई परिवर्तन होगा क्या? मनुष्य की वृत्ति का उसके भोजन से उतना सम्बंध नहीं होता, जितना उसके विचार, उसकी संगत से होता है। उसका धर्म ऊँचा होना चाहिए। अंध-विश्वास वाला धर्म नहीं होना चाहिए, बल्कि धर्म में स्पष्टता होनी चाहिए।

अगर तुम हमसे पूछते हो कि कौन-सा भोजन बेहतर है तो हम हमेशा कहेंगे कि शाकाहारी भोजन अच्छा है, खासकर भारत के लिए क्योंकि हमारा देश गरम है। ठण्ढी भी होती है तो कितने दिन होती है? एक-डेढ़ महीना होती है, बाकी समय तो तापमान 30-35 डिग्री रहता है। इसकी वजह से माँस खाने में एक और समस्या है, यह सड़ता जल्दी है। ऊपर से दिखता नहीं है, लेकिन बहुत जल्दी सड़ता है। उससे बीमारी हो जाती है, जिसे फूड पॉइज़निंग या भोजन विषाक्तता कहते हैं। भारत में जितने फूड पॉइज़निंग के केस होते हैं वे ज्यादातर मांसाहार के कारण होते हैं। हवाई जहाज में तो मछली परोसते नहीं हैं, अनुमति ही नहीं है। मछली बहुत तेजी से सड़ती है। दुनिया में कहीं पर भी हवाई जहाज में मछली परोसने की अनुमति नहीं है, क्योंकि इसमें फूड पॉइज़निंग की सौ प्रतिशत सम्भावना रहती है। कितने ही हवाई जहाजों में पायलट को फूड पॉइज़निंग हुआ। तब कौन हवाई जहाज चलाएगा? समस्या आ जाती है। इसलिए दुनिया की किसी भी एयर लाइन में मछली परोसने की अनुमति नहीं है।

रही बात यूरोपीयन देशों की, वहाँ तो इतनी ठण्ढ रहती है कि वहाँ तो दूध फटता ही नहीं है, उसको फ्रिज में रखने की जरूरत ही नहीं पड़ती। वे लोग मांस खाते हैं, फिर उसके दुर्गुण को समाप्त करने के लिए शराब पीते हैं। वहाँ शराब

की खपत बहुत ज्यादा है, वहाँ एक दिन में जितनी शराब की खपत होती है, उतनी दुनिया में साल भर में भी नहीं होती होगी। यह आज से नहीं, शताब्दियों से चल रहा है। ग्रीनलैंड और अलास्का जैसे स्थानों में एस्किमो लोग सील मछली को रायफल से मारकर लाते हैं और छत में डाल देते हैं। उनका छत तो 'डीप-फ्रीज़' है। जब जरूरत पड़ती है छूरे से काटकर लाते हैं और धुएँ के ऊपर पकाकर खाते हैं। एस्किमो लोगों का मकान पत्थर का थोड़े ही होता है, वह बर्फ का बना होता है। उनके मकान के खम्भे बर्फ के होते हैं, पत्थर जैसे कड़े होते हैं। ऐसे स्थानों में मांस का कोई बुरा असर होगा, हम नहीं मानते।

मांस का जो बुरा असर होता है, वह गरम देशों में होता है। मेडिटेरेनियन, ट्रॉपिकल और सब-ट्रॉपिकल देशों में ज्यादा होता है, जहाँ सड़ने की सम्भावना ज्यादा होती है। ठण्डे देशों में मांस सड़ता नहीं है, वहाँ तो छत पर पूरी सील मछली तीन-चार साल के लिए डाल देते हैं। जैसे तुम लोग 'डीप-फ्रीज़' में कुछ खाने की चीज डाल देते हो, वहाँ का तो पूरा वातावरण ही 'डीप-फ्रीज़' की तरह होता है। यहाँ भारत में सबेरे दाल बनाओ तो शाम को उसमें बास आ जाती है। उसे ज्यादा चलाना है तो फ्रिज में रखना पड़ेगा। हमारे यहाँ तो गरीब लोग हैं, ज्यादा-से-ज्यादा पांच-सात प्रतिशत के यहाँ फ्रिज होगा। ऐसी असुरक्षित परिस्थिति में मांसाहार करना खतरनाक है।

हमारी परिस्थितियाँ असुरक्षित हैं जबकि विदेशों के कसाईखानों में मांस काटा जाता है तो पहले जानवरों को इंजेक्शन दिया जाता है ताकि उनका मांस सड़े नहीं। फिर जब मांस कसाईखाने से बाहर आता है तो उनकी सारी गाड़ियों में 'डीप-फ्रीज़'होता है और मांस को हाथ से छूते नहीं हैं। दुकानों में भी पूरा रेफ्रिजरेशन होता है, वहाँ मांस टंगा रहता है। वहाँ बाँटने वाले भी हमेशा उसका निरीक्षण करते रहते हैं। फ्रान्स में हम जहाँ रहते थे, वहाँ बगल में कसाईखाना था। हमने कई जगह के कसाईखाने देखे हैं। वैसे हमने पढ़ा भी है, हमारा तो विषय था। इसलिए हम मानते हैं कि उनका मांस रखने का तरीका हमारे हिन्दुस्तान से अच्छा है। हिन्दुस्तान के लोगों को मांसाहार नहीं करना चाहिए। यहाँ का सर्वोत्तम भोजन है शाकाहार, दूध, दही, मेवे आदि, मगर ये सबके लिए उपलब्ध नहीं हैं। गाँव का आदमी यह सब खा सकता है आज?

प्याज भी मांसाहार में आता है क्या?

नहीं, प्याज मांसाहार में नहीं आता है। मांसाहार का तात्पर्य किसी जानवर के शरीर के मांस से है। अब जहाँ तक जीवन का सवाल है, यह तो सबमें है, लौकी में है, पालक में है, कंद-मूल, फल-फूल में है। प्याज को कंद कहते हैं। लहसून, आलू, मूली, गाजर, मिश्रीकंद, ये सब कंद हैं, जमीन के नीचे निकलते हैं। कंद माने गोल, मूल माने लंबा, कंद-मूल जमीन के नीचे होते हैं, फल-फूल ऊपर होते हैं। फल-फूल को अधिक मात्रा में सूर्य-किरणें मिलती हैं, वे ज्यादा शुद्ध होते हैं। कंद-मूल में अधिक मात्रा में माइक्रोब या जीवाणु होते हैं, इसलिए जैन लोग जमीन से नीचे की चीजें नहीं खाते हैं। जीवाणु का मतलब छोटे जीव, ये जीवन के सूक्ष्मतम कण होते हैं।

प्याज एक औषधि के रूप में इस्तेमाल किया जाता है और करना चाहिए, उसमें गंधक होता है, पर साथ ही उसमें दुर्गुण भी है। उसी तरह से लहसुन अच्छी चीज है, मगर दुर्गुण भी हैं उसमें। प्याज, लहसुन, मिर्ची, लौंग, काली मिर्च, ये खाद्य भोज्य नहीं हैं। ये औषधियाँ हैं, सब्जियाँ नहीं, इन्हें सब्जी में डाला जाता है। कुछ बीमारियों में प्याज मना करते हैं, लेकिन प्याज खराब चीज नहीं है।

धार्मिक लोग प्याज क्यों नहीं खाते हैं?

देखिये, हमारे धर्म के बहुत स्रोत हैं। यहाँ धर्म बहुत तरफ से आया है। अफ्रीका से लोग अपना धर्म लाये, सुदूर पूर्व से लाये, उत्तर-पश्चिम से लाये। जो जहाँ से

आया अपना धर्म लेकर आया, अपने रीति-रिवाजों और विश्वासों को लेकर आया। हिन्दुस्तान एक नस्ल तो है नहीं, अलग-अलग नस्लें हैं। आसाम के लोग पूर्व की तरफ से आये, पंजाब के लोग उत्तर-पश्चिम से आये। सब जगह से यहाँ लोग आए तो अपना पूजा-पाठ, खान-पान साथ लेकर आए। भारत के लोगों ने सोचा कि जब बाहर से लोग आ रहे हैं तो उनके रीति-रिवाजों में हम हस्तक्षेप क्यों करें। तुम आसामी हो, देवघर में आते हो, मछली खाते हो, हम नहीं खाते, तो खाने दो, आसामी है। आसाम का रीति-रिवाज आसामी का होगा, हमको उससे क्या मतलब?

हिन्दुस्तान की यही विशेषता है कि हमने किसी के रीति-रिवाजों के साथ हस्तक्षेप नहीं किया, न मुसलमानों के साथ किया, न ईसाइयों के साथ, न वैष्णवों के साथ, न शैवों के साथ, न शाक्तों के साथ, किसी के साथ नहीं। हमें सबको संरक्षण देना है, क्योंकि मुल्क किसी का नहीं है। यह मुल्क आसामियों का नहीं है, पंजाबियों, बंगालियों, मद्रासियों या उड़िया लोगों का नहीं है, यह मुल्क हिन्दुस्तानियों का है, जो यहाँ रहते हैं, जिनकी यह मातृभूमि है। जिनके पूर्वज यहाँ रहते आये हैं यह उनका मुल्क है। तुम अमावस्या को यज्ञ करते हो या पूर्णमासी को, शादी के वक्त तुम्हारी स्त्री बायीं तरफ बैठती है कि दाहिनी तरफ, तुम्हारी स्त्री सिंदूर लगाती है कि नहीं, तुम्हारी स्त्री साड़ी पहनती है या सलवार-कमीज या जीन्स, इस सबसे हमको क्या मतलब है? दूसरों के रीति-रिवाजों के साथ, उनके धर्म के साथ किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

रीति-रिवाजों के साथ हस्तक्षेप केवल जनमत के माध्यम से होना चाहिए। जैसे यहाँ विधवाओं को पति की चिता पर जला देते थे, पर वह बंद किया गया। उनको घर से अलग कर देते थे, अमंगल बोलते थे, पर धीरे-धीरे जन-चेतना जागी, जनमत जागा, अब उनकी भी एक सामाजिक हैसियत बन रही है। यहाँ जो भी होगा जनमत से होगा। अगर एक पंजाबी कहे कि देश सिर्फ मेरा है, कोई आसामी कहे है कि देश हमारा है तो क्या वास्तव में देश उनका हो गया? नहीं, यह देश किसी का नहीं है। जैसे आप आसामी हो, बरौनी रिफाइनरी में काम करते हो तो क्या वह रिफाइनरी आसामियों की हो गयी? नहीं, वह तो एक संस्थान है, कोई भी आकर उसे चला सकता है। उसी तरह से यह देश सबका है। यह इस देश का बहुत पहले से सिद्धान्त रहा है।

बीच-बीच में दूसरे किस्म के लोग भी आए हैं। मुसलमान आये, सबको मुसलमान बनाने की कोशिश की, ईसाई आये, सबको ईसाई बनाने की कोशिश की। विरोध हुआ उसका, क्योंकि यहाँ दूसरों के धर्म या रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप करने की परम्परा नहीं है। लेकिन यूरोप में चले जाओ, वहाँ तुमको मन्दिर नहीं मिलेगा, वे बनने नहीं देते। वे अखण्ड, एकरूपी समाज चाहते हैं। फ्रांस जाओ तो वहाँ सब जगह केवल फ्रेन्च ही पढ़ाई जाती है, कोई दूसरी भाषा पढ़ाई नहीं जाती। उनके यहाँ जितनी भी जनजातियाँ हैं उनकी भाषा नहीं पढ़ाते, उन्हें दबाते हैं। हम लोगों के यहाँ ऐसा नहीं है। आसामी भी पढ़ायेंगे, बंगाली भी पढ़ायेंगे, जहाँ जो ठीक है। हमारे संविधान में सभी भाषाओं को मान्यता दी गई है। इसलिए आसामियों का जो भोजन है वह आसामियों के लिए ठीक है। अगर तुम मछली खाना चाहते हो तो चलेगा।

इसका मतलब आसाम में हम मछली खा सकते हैं, लेकिन बिहार में आकर हमें मछली नहीं खानी चाहिए?

ऐसी बात नहीं है। हर आदमी को खुद अपनी आत्मा से प्रश्न करना चाहिए। इसका जवाब हर आदमी को समझदारी से स्वयं सोचना चाहिए। हमसे पूछोगे तो हम एक जवाब देंगे, उनसे पूछोगे तो वे दूसरा जवाब देंगे। हर आदमी अलग-अलग जवाब देगा। हरेक आदमी को अपनी आत्मा से पूछना चाहिए कि हम गरम देश में आए हैं, हमें मांसाहार करना चाहिए कि नहीं, हम ठण्डे देश में हैं, हमको सुरापान करना चाहिए कि नहीं। हर एक का रीति-रिवाज, भोजन, सभ्यता, संस्कृति अलग है।

अभी हिन्दुस्तान की ही बात बोल रहा हूँ, पर यहाँ एक बड़ी विचित्रता है। आसामी, बंगाली, उड़िया, पंजाबी, मराठी, मद्रासी – सब अलग-अलग होने पर भी उनमें एक बात समान है, सबने वैदिक रीतियों को स्वीकार किया। वैदिक का मतलब जो वेदों में लिखा है। वेद हमारे मूल ग्रंथ हैं, परन्तु साथ ही वेदों ने कहा, हर जाति की अपनी लोक-रीति होती है, उसको रहने दो। इसलिए आसाम में जो शादी होगी, वैदिक रीति से होगी, मगर उसमें आसाम की लोक-रीति भी रहेगी। वैष्णवों में शादी होगी तो वैदिक-रीति से होगी, मगर उनकी अपनी लोक-रीति भी रहेगी। यहाँ शादी में ताल-मखाना गिराते हैं, तुम्हारे यहाँ शायद चावल गिराते हैं, यह सब लोक-रीति में आता हैं। वेदों में नहीं लिखा है ऐसा।

हम लोगों का धर्म वैदिक-धर्म है और हमारी जो रीतियाँ हैं, वे लोक-रीतियाँ हैं। हर कौम का अपना-अपना तरीका है। हमारे यहाँ पूर्णमासी को शुभ कर्म होते हैं, जबकि दक्षिण-भारत में अमावस्या को मंगल कर्म होते हैं। उत्तर-भारत में ममेरा-फुफेरा भाई-बहनों में शादी नहीं हो सकती, दक्षिण-भारत में ममेरा-फुफेरा में सम्बन्ध हो जाता है। इसका मतलब जो आदमी जिस सभ्यता से आया, उसको वैसा ही रहने दो। अगर उसकी रीति गलत है, तो दूसरे को उसको सही करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। वह जाति स्वयं विचार करे और उसको ठीक करे। अगर विधवाओं का पुनर्विवाह होना है तो हम क्यों बोलेंगे? उस गाँव के, उस कौम के लोग खुद निर्णय करें कि पुनर्विवाह होना है कि नहीं होना। समाज सुधारक की जरूरत नहीं है, समाज खुद अपना सुधार करे।

एक बार मैं गाड़ी से गाँव गया था, रास्ते में एक महिला घूंघट डाल कर सड़क पार कर रही थी। यदि मैं तेज रफ्तार में होता तो उसको धक्का लग जाता। कितना खतरा है! हिन्दू समाज में बहुत परिवर्तन की आवश्यकता है न?

इसे कहते हैं रूढ़िग्रस्त समाज, जो बदलता नहीं है। हमारे समाज में घूँघट लगाने की कभी प्रथा नहीं रही है। वैदिक परम्परा में घूँघट की अवधारणा ही नहीं है। घूंघट लगाने की प्रथा मुसलमानों के समय आई। उनके यहाँ बुरका प्रथा थी, तो उन्होंने यहाँ भी बुरका पहनाया। बुरका नहीं पहना तो पल्ला सिर पर कर लिया। उनके यहाँ बुरके का मुख्य कारण है कि अरब क्षेत्र में तेज आंधियाँ चलती हैं। बुरका नहीं लगाओगे तो रेत तुम्हारे चेहेरे में लगेगी और वह रेत 50 डिग्री सेंटीग्रेड तक गरम होकर आती है, चिंगारी की तरह। चेहरे पर दाग आ

जाता है। वह रेत बहुत गरम होती है, उसमें थोड़ी दूर भी नंगे पैर नहीं चल सकते। इसलिए उन्होंने औरतों के लिए बुरका प्रथा कर दी, उनको गरम रेत से बचाने के लिए। उन लोगों ने उस प्रथा को यहाँ आकर भी लगाना शुरू किया। नासमझी में सोचा कि यहाँ भी बुरका लगाना जरूरी है। अब बुरके का मतलब हो गया औरत के चेहरे को छिपाना। औरत के चेहरे को छिपाने से क्या होगा? उसको टी.बी. होगा, एनीमिया होगा, कई तरह की बीमारियाँ होंगी।

ध्यान की अवस्था में किस तरह का आहार लेना चाहिए?

ये जोखिम भरे अभ्यास हम अब नहीं सिखाते हैं। हर आदमी को अपना एक व्यक्तिगत गुरु बनाना चाहिए और उसी से ध्यान सीखना चाहिए। व्यक्तिगत गुरु वह है जो शिष्य के लिए हमेशा उपलब्ध हो, जो हमेशा मार्गदर्शन कर सके। जैसे स्कूल मास्टर होता है, रोज तुमको बतलाता है कि तुमको क्या करना चाहिए। हम तो आज मिल गये, फिर पता नहीं कभी मिलेंगे कि नहीं। इसलिए हम ध्यान जैसे अभ्यास सिखाते नहीं हैं। गुरु का काम है शिष्य के साथ हमेशा सम्पर्क में रहना। हमारे साथ पहली बात तो यह कि हम उपलब्ध नहीं हैं, और दूसरी चीज, हमको गुरु बनना अच्छा नहीं लगता है। साधी-सी बात है।

आपको इतनी निराशा किसलिए हो गई है?

निराशा? हमें निराशा नहीं है। हमें संस्था का जो दायित्व दिया गया उसे हमने अच्छे से पूरा किया। आपको अगर किसी संस्था का अध्यक्ष बनाएँगे तो आप नहीं बनियेगा? हमको अध्यक्ष बना दिया, हमने मन लगाकर काम किया। जब रिटायरमेन्ट हुआ तो रिटायर्ड हो गये, उसमें क्या है? हमको अब इन सब कर्मों में रुचि नहीं है। मगर हाँ, जब तक हमारी ड्यूटी थी, हमने वे सारे कर्म किये।

– 9 मार्च 1998, रिखियापीठ

मानव जीवन का प्रयोजन

भगवान का अस्तित्व निश्चित रूप से है। इसलिए हर एक आदमी को आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहिये। गृहस्थाश्रम में भी यह क्रम चलना चाहिये, परमात्मा के बारे में सोचना चाहिये। इसलिये नहीं कि परमात्मा तुम्हें बेटा-बेटी देगा, रुपया-पैसा देगा, यह देगा, वह देगा। ऐसा नहीं सोचना है। परमात्मा ने हमको सब कुछ दिया है। सबसे पहले तो यह शरीर दिया है, फिर बुद्धि दी है, फिर पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं जो किसी को नहीं दी हैं। तब भी अगर हम सोचें कि खाना-पीना, सोना, पैसे कमाना और बाल-बच्चे पैदा करना ही हमारा धर्म है तो यह समझ गलत है। यह तो कुत्ता भी करता है। दुनिया में जितने जानवर हैं सभी बच्चे पैदा करते हैं, खाते-पीते-सोते हैं, तो हममें और उनमें फर्क क्या है? एक ही फर्क है, मनुष्य परमात्मा के बारे में सोच सकता है और वह परमात्मा अन्दर में है।

वह परमात्मा ज्योतिरूप है, यह सब कहते हैं, मगर वह दिखता नहीं है। क्यों नहीं दिखता? दिखेगा भी कैसे, तुम तो बाहर देख रहे हो! अन्दर देखोगे तब तो दिखेगा। अब यहाँ बैठे-बैठे भीतर के कमरे में जल रही मोमबत्ती को कैसे देख सकोगे? जलती मोमबत्ती को देखने के लिये कमरे में जाना होगा। इसी तरह भगवान का अनुभव करने के लिए अन्दर जाना चाहिये। अन्दर जाने का तरीका क्या है? रोज नियम से आसन लगाकर गुरु-मन्त्र का जप करना।

ध्यान में मन न लगे तो संत-महात्माओं के सत्संग में जाना और रामायण, गीता, भागवत या गुरु ग्रन्थ साहब जैसे सद्ग्रन्थों को पढ़ना।

मनुष्य जन्म का एकमात्र उद्देश्य है भगवान का अनुभव करना। यह मनुष्य शरीर तुमको बच्चे पैदा करने के लिये या घर-गृहस्थी को देखने के लिये या पैसे बनाने के लिये या घर बनाने के लिये ही नहीं मिला है। यह काम तो सभी पशु-पक्षी करते हैं। कुत्ते, गाय या घोड़े, सभी बच्चे पैदा करते हैं और उनका पालन-पोषण करते हैं। अपना घोंसला तो चिड़िया भी बनाती है। मनुष्य जन्म जो मिला है, उसका पहला काम है मन को भगवान में लगाना।

अब तुम घर-गृहस्थी में फँसे हो तो ठीक है, वह तो करना ही पड़ता है। दुनिया में रहना है तो यह सब करना ही पड़ता है। पर असली चीज है, 'मैं कौन हूँ?' अगर मैं कहूँ कि 'मैं स्वामी सत्यानन्द हूँ' तो यह मात्र एक नाम है जो पहचान के लिये गुरुजी ने दिया है। तुम सावित्री हो, कलावती हो, निर्मला हो या द्रौपदी हो – ये तो नाम दिये गये हैं तुम्हें। यह तुम्हारा असली नाम तो है नहीं, किसी ने ठप्पा लगा दिया कि तुम उर्मिला, निर्मला या उमा हो। यह नाम दुनिया का दिया हुआ है, मगर तुम्हारा असली नाम क्या है? तुम्हारा नाम है आत्मा।

इस मकान को देखो जिसमें मैं रहता हूँ, यह ईंटों का, सीमेन्ट का बना है। इसी तरह पाँच तत्त्वों से बने हुए इस नौ दरवाजे वाले बंगले के अन्दर मैं रहता हूँ, मगर मजे की बात यह है कि सभी मकान को ही देखते हैं, रहने वाले को कोई नहीं देखता। वह रहने वाला जिसका नाम बताया है आत्मा, उसे कोई राम कहता है, जिसका मतलब हुआ 'जो रमा हुआ है।' कोई उसे विष्णु कहता है। यह भी ठीक है। विष्णु शब्द का अर्थ है – 'जिसका अन्दर में प्रवेश है, जो भीतर घुसा हुआ है।'

उस ज्योतिस्वरूप आत्मा को देखने के लिये हर एक आदमी के भीतर ललक होनी चाहिये। उस ज्योति को गृहस्थ आश्रम में भी पा सकते हो और संन्यास आश्रम में भी। उसे कोई भी प्राप्त कर सकता है, चाहे वह मांस खाये, शराब पिये, ब्रह्मचर्य का पालन करे या शादी करे, बच्चे पैदा करे, कुछ भी करे। उसके पास पैसे ज्यादा हैं कि कम हैं, उसने बढ़िया कपड़ा पहने रखा है कि घटिया, वह दिन में सोता है कि रात में, वह स्त्री है कि पुरुष, ब्राह्मण है कि क्षत्रिय, वैश्य है कि शूद्र, नीची जाति का है कि ऊँची जाति का, कोई फर्क नहीं पड़ता। उस परमात्मा में जिसकी ललक होगी उसको वह मिल जायेगा। जो खोजेगा वह पावेगा।

मनुष्य जीवन का सार यही है कि यह शरीर एक घर की तरह है जिसमें आत्मा का वास है। यह घर एक मन्दिर है और परमात्मा उसमें निवास करता है। तुम खोजोगे तो उसे पा जाओगे। मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य ही ईश्वर को पाना है। अन्य बातों का कोई महत्त्व नहीं। तुम ईसाई हो या हिन्दू हो या मुसलमान हो, तुम अच्छे आदमी हो या बुरे हो, तुम शाकाहारी हो या मांसाहारी हो, तुम शराब पीते हो या नहीं पीते हो, ये बातें मायने नहीं रखतीं। अगर तुम ज्यादा शराब पीयोगे तो तुम्हारा शरीर प्रभावित होगा, अगर ज्यादा खाओगे तो मोटे हो जाओगे, नहीं खाओगे तो दुर्बल हो जाओगे। ये सारी बातें शरीर से सम्बन्ध रखती हैं, भगवान से इनका सरोकार नहीं है। यदि तुम ईश्वर को वाकई पाना चाहते हो तो इनमें से कोई भी बाधा तुम्हें उसके पास पहुँचने से रोक नहीं सकती। भगवान को पाने के लिये मनुष्य के अन्दर उतनी ही ललक होनी चाहिये जितनी ललक उसको संसार की चीजों को पाने के लिये है।

– 17 मार्च 1998, रिखियापीठ

सत्यम् संवाद

कई बार आदमी सोचता है कुछ, पर होता है कुछ और। ऐसा क्यों?

इसलिए कि आदमी अपने ढंग से सोचता है, लेकिन दुनिया में जो कुछ भी होता है वह संसार के अपने नियम और गणित के अनुसार होता है। अब जैसे कभी-कभी कोई महात्मा पशु योनि में भी प्रवेश कर लेते हैं। भगवान बुद्ध ने जन्म लेने के पहले अनेक जन्मों में अनेकों पशुओं के रूप में जन्म लिया। एक बार बैल बने तो एक बार हाथी। जिस-जिस योनि में जन्म लिया वहाँ उनको सब याद रहा और पशु योनि में भी वे एक बोधिसत्त्व की तरह व्यवहार करते थे।

हमने बहुत-से कुत्ते देखे हैं जिनका स्वभाव अलग किस्म का था। भागलपुर में एक कुत्ता देखा जो एकादशी के दिन भोजन नहीं करता था। जिस दिन वह मरा, हम तो वहाँ नहीं थे, एक दिन पहले उसने उपवास किया था, दूसरे दिन मन्दिर में गया जहाँ शिवलिंग था, वहीं जाकर मरा। इसका मतलब वह कुत्ता नहीं था, उसमें किसी महापुरुष की आत्मा थी। किसी वजह से महापुरुष पशु-योनि में पैदा होते हैं और कुछ वर्षों तक उसमें रहते हैं। काक-भुशुण्डी सर्प होकर पर्वत पर रहे, अन्त में ब्राह्मण होकर जन्मे। ऐसी घटनायें होती हैं, मगर सामान्य नहीं हैं।

सब पशु मूल प्रवृत्तियों के आधार पर ही काम करते हैं। वे सोच-समझ कर कुछ नहीं करते। जो भी जानवर हो, चाहे कीड़ा-मकोड़ा हो या पशु-पक्षी, वह बुद्धि का प्रयोग नहीं करता, बल्कि अपनी प्रवृत्ति के कारण ही उसको पता चलता है। मनुष्य के विकास के भी तीन स्तर होते हैं – मूल प्रवृत्ति, बुद्धि और अंतर्प्रज्ञा। पशु योनि मूल प्रवृत्ति की है, मनुष्य योनि बुद्धि की है और जो संत-महात्मा होते हैं वे अंतर्ज्ञानी होते हैं और उसी अंतर्ज्ञान के आधार पर काम करते हैं।

अंतर्ज्ञान का आधार बुद्धि नहीं, भावना है। जो साधक भावनाशील होते हैं उनको अंतर्ज्ञान प्राप्त होता है, और जिस साधक में भावना नहीं होती उसे चाहते हुए भी अंतर्ज्ञान प्राप्त नहीं होता। बुद्धि कुछ हद तक मदद करती है, मगर आगे जाकर मदद नहीं करती। महर्षि अरविन्द ने लिखा भी है – 'बुद्धि सहायक है और बाधक भी, इसके पार जाओ।'

– 2 जनवरी 1998, रिखियापीठ

हमारे शास्त्रों में वर्णित ब्रह्मास्त्र जैसे अस्त्र वास्तव में क्या हैं?

पहले के समय में ब्रह्मास्त्र आदि होते थे, आज के जमाने में वे मिसाइल्स होते हैं। शिव जी का बनाया हुआ पाशुपतास्त्र, विष्णु जी का बनाया हुआ नारायणास्त्र और ब्रह्मा जी का बनाया हुआ ब्रह्मास्त्र – ये बड़े अस्त्र माने जाते हैं। ब्रह्मास्त्र सबको नहीं दिया जाता है और उसका उपयोग भी नहीं किया जाता है। वह केवल डराने के लिये दिया जाता है। जैसे एटम-बम का प्रयोग नहीं होता है। हम तुमको डराते हैं, तुम हमको डराते हो। हम कहते हैं, 'खबरदार! नहीं तो तुम्हारा देश नष्ट कर देंगे,' मगर अणु-बम छोड़ते नहीं हैं। अगर एटम-बम छोड़ने लग जायें तो सारी दुनिया दो मिनट में चौपट हो जायेगी। इसी तरह से ब्रह्मास्त्र का भी उपयोग नहीं होता है। जब लक्ष्मण जी ब्रह्मास्त्र का उपयोग करने जा रहे थे तो राम जी ने उनको रोक दिया था। ब्रह्मास्त्र का उपयोग अगर कोई करे तो दूसरे आदमी को अपना अस्त्र हाथ से छोड़ देना चाहिये। मेघनाद ने जब ब्रह्मास्त्र छोड़ा तो लक्ष्मण जी ने नमस्कार करके अपना अस्त्र छोड़ दिया।

पहले के जमाने में लोगों का मन बहुत मजबूत था। वे मन्त्र-सिद्ध होते थे, मन्त्र से अस्त्र का आवाहन करते थे। आजकल लोगों का दिमाग कमजोर हो

गया है और वे मन्त्र-सिद्धि भी नहीं कर पाते हैं, बहुत-सी बाधाएँ हैं। मन्त्र के द्वारा ब्रह्मास्त्र का आवाहन आज कोई नहीं कर सकता। इसलिये इन लोगों को एटम-बम इत्यादि बनाना पड़ता है। पहले के जमाने में मन्त्र के द्वारा अस्त्र का आवाहन किया जाता था, मिसाइल की तरह नहीं रखा जाता था। धनुष के बिना सन्धान हो सकता था, धनुष की भी जरूरत नहीं पड़ती थी, जैसे राम जी ने एक घास के तिनके को मन्त्र से अभिमन्त्रित करके इन्द्र के पुत्र, जयन्त पर छोड़ दिया और फिर जयन्त भागते फिरा।

– 13 मार्च 1998, रिखियापीठ

कहते हैं कि मन्त्र के द्वारा दूसरों को वश में किया जा सकता है, यह सत्य है क्या?

हो सकता है, मानते हैं, लेकिन आज अपनी मानसिक स्थिति को देखिये। आप जानते हैं कि खैनी ठीक नहीं है, पर नहीं छूटती है। खैनी या चाय जैसी छोटी-छोटी चीजें हैं, जानते हैं कि खराब है, फिर भी नहीं छूटती हैं। मन इतना कमजोर है। मन्त्र-सिद्धि के लिये मन का एकाग्र होना आवश्यक है। उस समय दिमाग में दूसरी चीज आनी नहीं चाहिये। मन जब इतना एकाग्र हो जाये तो मन्त्र-सिद्धि प्राप्त कर सकते हो। लेकिन मन को एकाग्र करना बहुत मुश्किल है। क्यों मुश्किल है? इसलिये कि शरीर मन पर आश्रित है। मन को एकाग्र करोगे तो तुम्हारे शरीर पर इसका असर जरूर पड़ेगा। हृदय पर असर पड़ेगा, रक्तचाप पर असर पड़ेगा, दिमाग पर असर पड़ेगा। विषाद में चले जाओगे। कितने साधु हमारे जान-पहचान के हैं जिनको विषाद हो गया।

मैं एक बार मध्य-प्रदेश में चातुर्मास कर रहा था। एक सेठ जी के यहाँ रहता था जिनका रसोईया एक बार का खाना लेकर मेरे पास आता था। उसे मेरे से बड़ी प्रेरणा मिली, सब कुछ छोड़कर चला गया। छः साल के बाद आया तो समझो कि एकदम खाक हो गया था। कोई भी चीज उसको समझ में नहीं आती थी। ऐसा क्यों हुआ? उसने कोई साधना की होगी। अब साधना करने के लिये शरीर को भी प्रशिक्षण देना बहुत जरूरी होता है। शरीर और मन शुद्ध होना चाहिये। फिर तीसरी बात है डी.एन.ए. फैक्टर। आजकल के लोगों की क्वालिटी बहुत निम्न स्तर की है। जैसे आप सस्ती मशीन बनाते हो तो निम्न क्वालिटी की होती है, उसी तरह से हमलोगों के बच्चे सब निम्न क्वालिटी के हैं। यह सब डी.एन.ए. फैक्टर के अन्तर्गत आता है। बच्चा पैदा

होने के बाद भी माता-पिता का व्यवहार, भोजन आदि उसे प्रभावित करता है। माता-पिता एक-दूसरे पर क्रोध करें और चाहें कि उनका बच्चा एकदम होनहार हो, यह नहीं हो सकता। इस देश में क्या होते रहा है? कई सौ सालों से लड़ाइयाँ हो रही हैं, आक्रमण होते हैं, स्त्रियों का अपहरण होता है, बलात्कार होता है, सन्तानों का वर्णसंकर होता है। हजारों-लाखों की संख्या में हुआ है, अपनी आँखों के सामने तो देखते ही हो कि क्या हालत होती है।

हम अच्छे आदमी हैं और हमारी सन्तान अच्छी होगी, यह कोई जरूरी तो नहीं है, क्योंकि हम भागे जा रहे हैं यहाँ से वहाँ, न खाने का ठिकाना, न रहने का ठिकाना। पाकिस्तान में क्या हो रहा है, पंजाब में क्या हो रहा है, बंगलादेश में क्या हो रहा है, रूस में क्या हुआ, बोसनिया में क्या हुआ, वीयतनाम में क्या हुआ, सब जगह देखते ही हैं। गीता में श्रीकृष्ण के आगे अर्जुन ने सबसे पहली समस्या यही रखी कि युद्ध होने से वर्णसंकर सन्तानें होंगी और वे कुल की परम्पराओं को नहीं मानेंगी, कुल का नाश करेंगी।

मेरे कहने का मतलब यह है कि यदि तुम एकाग्रता का प्रयास करोगे भी तो उसका तुम्हारे शरीर पर जो प्रभाव पड़ेगा उसको सहन नहीं कर सकोगे। हमलोगों ने ऐसा देखा है कि जब मस्तिष्क को डेल्टा या थीटा तरंगों के बाद अल्फा तरंग में लाया जाता है तो रक्तचाप बहुत गिर जाता है। रक्तचाप गिरने का मतलब होता है कि डिप्रेशन या विषाद की अवस्था आती है। जब मनुष्य का मन विषाद की अवस्था में होता है तो उस वक्त वह कुछ सोच ही नहीं सकता है। आँखें केवल देखती रहती हैं, चलने में दिक्कत होती है, श्वास तेज चलने लगती है| इसलिए कलियुग एकाग्रता का युग है ही नहीं। थोड़ा बहुत मन एकाग्र कर लिया, उतना ठीक है। कलियुग में दो ही रास्ते हैं, पहला – भगवान का नाम लिया और दूसरा – दूसरे का जितना भला हो सके उतना करो। बाकी सब भूल जाओ, कलियुग में तीसरा रास्ता नहीं है।

– 13 मार्च 1998, रिखियापीठ

आपने एक बार कहा था कि पचास साल की उम्र के बाद व्यक्ति के निर्णय ज्यादातर गलत होते हैं, लेकिन राजनीतिज्ञों को देखें तो कई राजनेता पचास के ऊपर हैं। ऐसे में वे लोग कैसे निर्णय लेते हैं?

आप किस प्रकार जानते हैं कि उनके निर्णय ठीक ही हैं। उनके निर्णय गलत भी हो सकते हैं, शायद इसीलिए सब जगह इतनी समस्याएँ हैं। हर समाज,

संस्कृति और सभ्यता अपने अतीत का परिणाम है, निरंतर विकास का परिणाम है। किसी भी संस्कृति को, चाहे वह भारतीय हो या पाश्चात्य या चीनी, रातोंरात बदलना सम्भव नहीं क्योंकि मनुष्य स्वाभाविक ही मानसिक असुरक्षा से पीड़ित है, चाहे वह बाल-बच्चों के बारे में हो या नौकरी-पेशे के बारे में। लोग चाहते हैं सब कुछ बढ़िया हो, उनकी मर्जी के अनुसार हो, पर क्या यह सम्भव है? सृष्टि की रचना तीन गुणों से हुई है। सत्त्व प्रकाशात्मक है, रजस् गत्यात्मक है और तमस् आलस्य है। कभी रजस् ज्यादा होता है तो कभी तमस् तो कभी सत्त्व। ये गुण जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त हैं।

आज तुम भ्रष्टाचार की बात करते हो, उसका कारण पूछते हो, लेकिन जरा सोचो कि राम और सीता ने अवतार क्यों लिया? ईसा मसीह ने जन्म क्यों लिया? मोहम्मद क्यों आये? इसलिए कि पाप बहुत अधिक हो गये थे। आधुनिक भाषा में इसे ही भ्रष्टाचार कहते हैं। भ्रष्टाचार की परिभाषा यही है कि परिस्थिति को अपने लाभ के लिए मोड़ना, वह लाभ चाहे नैतिक हो या राजनैतिक।

भ्रष्टाचार का जन्म तो आदम और हौवा के साथ हुआ था। आज जिनके पास बैंक में करोड़ों रुपये हैं वे भी भ्रष्ट हैं, कुली भी भ्रष्ट हैं, क्योंकि पिछली दो-तीन शताब्दियों में रुपये-पैसे का महत्त्व बहुत बड़ गया है। पहले रुपया-पैसा इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, वस्तु ज्यादा महत्त्वपूर्ण थी। तुम्हारे पास एक भैंस है, दो गायें हैं, घोड़े हैं, घोड़ा गाड़ी है, इतना पर्याप्त था। पर जबसे अन्तरराष्ट्रीय व्यापार शुरू हुआ तो वस्तु के बनाम पैसा आ गया। यह चीज 5 रुपये की है, यह चीज 10 रुपये की है, जिसे आप उस वस्तु की कीमत कहते हैं। पहले

वस्तु की कीमत किसी दूसरी वस्तु से ही होती थी, पर अब वस्तु की कीमत पैसा है, क्योंकि पैसा ऐसी चीज है जिसे आप जहाँ भी चाहे रख सकते हैं। लेकिन तुम 20 बैलगाड़ियाँ नहीं रख सकते और न ही उन बैलगाड़ियों से कुछ खरीद ही सकते हो। हाँ, पैसे से जो चाहे खरीद सकते हो।

पिछली शताब्दियों में मुद्रा का बाजार तेजी से बड़ा है, पिछले साठ सालों में तो यह बहुत बड़ा है। मुझे याद है बचपन में मेरे पिताजी की तनखाह 18 रुपये महीना थी। उस समय एक रुपये में 6 किलो आटा, 6 किलो घी आ जाता था। जब में ऋषिकेश में था तब एक दिन की मजदूरी 3 रुपये थी क्योंकि उस समय पैसा इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था।

भ्रष्टाचार खत्म होने वाला नहीं है, यह बात ठीक से समझ लो। शास्त्रों ने साफ-साफ कहा है कि कलियुग में अर्थ और काम ही पुरुषार्थ है। यही आज के समाज की संरचना है। इस दुनिया में यदि तुम भ्रष्टाचार का साथ नहीं देना चाहते हो तो अपने बचाव का रास्ता निकाल लो। हम तो कहते हैं कि अपने को भ्रष्टाचार के साथ एडजस्ट करना है, उसमें भाग नहीं लेना है और वही हम लोग करते आये हैं। हम जब ऋषिकेश या मुंगेर में थे तो कुछ लोगों से मिलते ही नहीं थे। कलेक्टर वगैरह से, और दूसरा, राजनीति वालों से बहुत सावधान रहते थे। ये लोग आते भी थे तो अपनी मर्जी से आते थे, हम कभी नहीं बुलाते थे। कभी भी उद्घाटन वगैरह के लिए आमंत्रित नहीं करते थे। इतना जरूर है कि इससे काम में थोड़ी देरी होती है, मगर हम किसी तरह काम चला लेते थे, अपने ढंग से करा लेते थे। पैसा हमारे पास था, हम दे सकते थे, मगर नहीं, संन्यासी को भ्रष्टाचार में भाग नहीं लेना चाहिये।

हमारे जीवन का एक सिद्धान्त है कि जब कोई आदमी डूब रहा हो तो उसको जरूर बचाना, मगर एक सीमा तक। यदि तुम ही डूबने लग जाओ तो उसको छोड़ दो, क्योंकि अभी तो एक ही आदमी डूबेगा तब तो दोनों डूबेंगे। एक बार कुछ काम करने के लिये एक सरकारी ऑफिसर ने स्वामी सत्संगी से कहा, 'आप मुझे एक गाय दे दीजिये।' स्वामी सत्संगी मेरे पास आयी तो मैंने कहा, 'अरे! हमारे यहाँ तो गाय दान तब करते हैं जब घर में कोई मरता है।' जब स्वामी सत्संगी ने उससे कहा तो वह ठण्डा पड़ गया, कहा, 'मरने का हिसाब-किताब नहीं चाहिये, मुझे दान नहीं लेना।'

आदमी जो दूसरे का भला करता है वह दूसरे की भलाई के लिये नहीं, अपनी भलाई के लिए करता है, यह शास्त्र का सिद्धान्त है। दूसरे का भला तुम

इसलिये करते हो क्योंकि इससे तुम्हारा भला होता है। तुम अपने पिता से जो प्रेम करते हो वह उनके लिए नहीं, बल्कि अपने लिए है। तुम अपनी पत्नी से प्रेम करते हो तो वह उसके लिए नहीं, अपने लिए है। व्यक्ति जो कुछ भी करता है वह उसके पास लौटकर आता है। अच्छा-बुरा, सब तुम्हारे पास वापस आता है। जो सेवा करता है वह अपने लिये करता है। मैं तो सबसे कहता हूँ, 'मैं जो कुछ कर रहा हूँ, अपने लिये कर रहा हूँ, क्योंकि मुझको पता चला है कि इसको करने से अपना आध्यात्मिक उत्थान होता है।' यह बात अच्छी तरह समझ लो। दूसरों का क्या भला करोगे तुम? लंगड़ा लंगड़ा रहेगा, पाजी पाजी रहेगा, उल्लू उल्लू रहेगा, कुछ फर्क नहीं पड़ने का। हम जो भी काम करते हैं या तुम लोगों को करने को कहते हैं, उसके पीछे यही सिद्धान्त है कि तुम्हारा कर्म तुम्हारे पास लौटकर आता है।

दूसरों को भोजन देकर तुम अपना पोषण करते हो, दूसरों की मदद करके तुम अपनी मदद करते हो, यह अटल नियम है। दूसरे से घृणा करके तुम अपने से ही घृणा करते हो, दूसरों से प्रेम करके अपने से ही प्रेम करते हो। ऐसा मत कहो कि मैं अपने पिता से प्रेम करता हूँ क्योंकि वे मेरे पिता हैं या मैं अपनी पत्नी से प्रेम करता हूँ क्योंकि उसको जरूरत है। नहीं, तुम अपने लिए उससे प्रेम करते हो। आधुनिक मनोविज्ञान भी कहता है कि यह तुम्हारा अहं ही है। तुम सिर्फ अपने से प्रेम करते हो। जो भी तुम करते हो वह दया या करुणा के कारण नहीं, बल्कि स्वयं के लिए करते हो।

– 13 मार्च 1998, रिखियापीठ

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् गाथा – सत्यम् के संग बीता बचपन

पृष्ठ 24

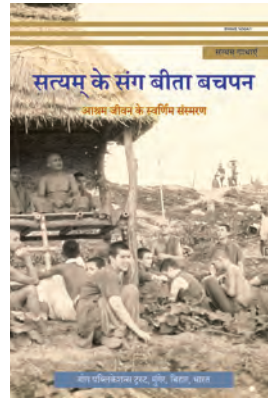

उपलब्ध

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

श्री हरिओम जायसवाल जन्म से अपने गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी की छत्र-छाया में रहे। बाल्यावस्था में गुरु से मिली संस्कारों और शिक्षाओं की निधि उनके भावी जीवन की आधारशिला बनी। उनका यह मर्मस्पर्शी संस्मरण गुरु के संग अपनी जीवन यात्रा की कुछ प्रेरक अनुभूतियों, शिक्षाओं और आपबीतियों को हमारे समक्ष उजागर करता है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

हमें यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध हैं –

www.satyamyogaprasad.net

www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2022 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2022 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक